पत्रावली

स्वामी विवेकानन्द

(द्वितीय भाग)

अनुवादिका—श्रीमती चन्द्रकुमारी हंडू
एम. ए.



श्रीरामकृष्ण आश्रम
नागपुर, मध्यप्रदेश

जनवरी १९५०] [मूल्य २=)

प्रकाशक—
स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम,
नागपुर-१, मध्यप्रदेश

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थ-माला
पुष्प ४८ वाँ

मुद्रक—
रतिलाल वाडीलाल शाह
सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस,
सुभाषचन्द्र रोड, गणेशपेठ, नागपुर

वक्तव्य

स्वामी विवेकानन्द के पत्र स्फूर्ति और आत्मबल-संचार के सबसे श्रेष्ठ साधन हैं। इन पत्रों में स्वामीजी ने जीवन की सभी आतुर समस्याओं पर प्रकाश डाला है। इतना ही नहीं, उन्हें हल करने के उपाय भी सुझाये हैं। जीवन के राष्ट्रीय, संस्कृतिक एवं धार्मिक अंगों पर भी काफी विवेचन किया गया है। अतएव जो जनसाधारण का उद्धार और उन्हें सर्वांगीण समुन्नत करने की कामना रखते हैं उनके लिए ये पत्र परम उपयोगी सिद्ध होंगे। स्वामीजी भारत को आध्यात्मिक क्षेत्र में संसार का अगुआ बनाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने आदर्श जीवन-निर्माण पर अत्यधिक आग्रह प्रदर्शित किया है। आशा है इन पत्रों से आदर्श जीवन निर्माण में निश्चय सहायता मिलेगी।

हमें यह कहते बड़ी प्रसन्नता होती है कि इन पत्रों का अनुवाद प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती चन्द्रकुमारी हंडू, एम. ए., बार्लोगंज, मसूरी ने अत्यन्त श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक सफलता के साथ किया है। उनके इस बहुमूल्य एवं सफल कार्य के लिये हम उन्हें हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

श्री पं. विद्याभास्करजी शुक्ल, एम. एस-सी., पी-एच. डी., प्राध्यापक, कालेज आफ साइन्स, नागपुर के भी हम बड़े आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तक के प्रूफ-संशोधन में हमें बहुमूल्य सहायता दी है।

हमें विश्वास है, जनता इस पुस्तक से लाभान्वित होगी।

नागपुर, प्रकाशक

ता. १-१-१९५०



स्वामी विवेकानन्द

पत्रावली



(श्रीयुत हरिदास बिहारीदास देसाई को)

शिकागो,
२९ जनवरी १८९४

प्रिय दीवानजी साहब,

आपका पिछला पत्र मुझे कुछ दिन हुए मिला था। आप मेरी बेचारी माता व भाइयों से मिलने गए थे, मैं यह सुनकर प्रसन्न हुआ। दीवानजी, आपको यह जानना चाहिये कि मैं कोई पाषाण-हृदय वाला पशु नहीं हूँ। यदि मैं सारे संसार में किसी से प्रेम करता हूँ तो वह अपनी माता से। फिर भी मैं विश्वास करता था और अब भी करता हूँ कि यदि मैं संसार-त्याग न करता तो जिस महान् आदर्श का, मेरे गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस उपदेश करने आए थे उसका प्रकाश न होता; और वे नव-युवक कहाँ होते जो आजकल के भौतिकवाद और भोग-विलास की उत्ताल तरङ्गों को कोट की तरह रोक रहे हैं। उन्होंने भारत को बहुत लाभ पहुँचाया है, विशेषतः बंगाल को, और अभी तो काम आरम्भ ही हुआ है। परमात्मा की कृपा से ये लोग ऐसा काम करेंगे जिससे संसार युगों तक इन्हें आशीर्वाद देगा। इसीलिए एक ओर तो थे भारतीय भविष्य धर्म,

तथा सब संसार के धर्मों के विषय में मेरे कल्पित स्वप्न, और उन लाखों मनुष्यों के प्रति मेरा प्रेम जो युगों से डूबते जा रहे हैं, और कोई उनकी सहायता करने वाला नहीं है—यही नहीं, उनकी ओर तो कोई ध्यान भी नहीं देता है—और दूसरी ओर था मेरे निकटस्थ और प्रियजनों को दुःखी करना। मैंने पहला पक्ष चुना, "शेष सब परमात्मा करेगा।" यदि मुझे किसी बात का विश्वास है तो वह यह कि वह मेरे साथ है। जब तक मैं निष्कपट हूँ तब तक मेरा विरोध कोई नहीं कर सकता, क्योंकि परमात्मा मेरा सहायक होगा। भारत में अनेकानेक ऐसे व्यक्ति थे जो मुझे समझ न सके, और वे बिचारे समझते भी कैसे, क्योंकि खाने-पीने की दैनिक क्रिया को छोड़ कर उनका ध्यान कभी आगे बढ़ा ही न था। आप जैसे कोई-कोई उदार हृदय वाले मनुष्य मेरा मान करते हैं, यह मैं जानता हूँ। आप जैसे महात्मा का भगवान भला करें। परन्तु मान हो या अपमान, मैंने तो इन नव-युवकों का संगठन करने के लिए जन्म लिया है। यही क्या, प्रत्येक नगर में सैकड़ों मेरे संग सम्मिलित होने को तैयार हैं, और मैं चाहता हूँ कि उन्हें अबाध्य गति की तरङ्गों के समान मैं भारत में सब ओर भेजूँ; और आश्वासन, धर्म और शिक्षा नीच से नीच और दीन, हीन, पद-दलितों के द्वार तक पहुँचाऊँ। और यह काम मैं करूँगा, चाहे मैं मर भी जाऊँ।

हमारे लोगों में न विचार है, न गुण-ग्राहकता। इसके विपरीत एक सहस्र वर्ष के दासत्व का जो स्वाभाविक फल है, अर्थात् भीषण

ईर्ष्या और सन्देहशील प्रकृति उसके कारण वे प्रत्येक नए विचार का वैरभाव से विरोध करते हैं। फिर भी ईश्वर महान् है।

आरती तथा अन्य विषय जिनका आपने प्रसंग चलाया है, यह भारत के मठों में सब जगह प्रचलित है, और वेदों में पहला धर्म गुरु की पूजा मानी गई है। इसमें गुण और दोष दोनों ही पक्ष देखने में आते हैं, परन्तु आपको याद रखना चाहिये कि हम एक अनुपम संघ हैं, और हममें से किसी को भी यह अधिकार नहीं है कि वह अपने धार्मिक भाव का दूसरों पर बलपूर्वक आरोप करे। हममें से बहुतसे लोग मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं रखते, परन्तु उन्हें दूसरों की मूर्तिपूजा का खण्डन करने का भी कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से हमारे धर्म का मुख्य सिद्धान्त टूटता है। फिर ईश्वर भी मनुष्य रूप में, और मनुष्य के द्वारा ही जाना जा सकता है। प्रकाश का स्फुरण सब स्थानों में होता है—अंधेरे से अंधेरे कोने में भी—परन्तु मनुष्य को वह दीपक के रूप में ही दिखता है। इसी तरह यद्यपि ईश्वर सर्वत्र है परन्तु हम उसे एक विराट मनुष्य के रूप में ही देख सकते हैं। ईश्वर के लिए जितने विचार हैं—जैसे कि दयालु, पालक, सहायक, रक्षक—ये सब मानवीय भावात्मक (Anthropomorphic) विचार हैं, और पुनः ये सब विचार किसी मनुष्य में गूँथे रहेंगे, चाहे उसे गुरु मानिये, चाहे ईश्वरी दूत और चाहे अवतार। मनुष्य अपनी प्रकृति से बाहर नहीं जा सकता जैसे आप अपने शरीर में से बाहर नहीं कूद सकते। यदि कुछ लोग

अपने गुरु की उपासना करें तो इसमें क्या हानि है, विशेषतः जब कि वह गुरु सब ऐतिहासिक ईश्वरी दूतों का सम्मिश्रण करने पर भी उनसे सौ बार अधिक पवित्र हो। यदि ईसा मसीह, कृष्ण और बुद्ध की पूजा करने में कोई हानि नहीं है, तो इस मनुष्य को पूजने में क्या हानि हो सकती है, जिसके विचार या कर्म में मलीनता छू तक नहीं गई है, जिसकी बुद्धि अन्तर्ज्ञान द्वारा सब ईश्वरी-दूतों से—जो कि एक-पक्षवादी हैं—एक अपरिमित अंश में बढ़ी-चढ़ी है? दर्शन, विज्ञान की थोड़ी भी सहायता न लेकर इसी महापुरुष ने जगत के इतिहास में सर्वप्रथम सत्य सम्बन्धी इस तथ्य का प्रचार किया कि सभी धर्म सत्य हैं; एवं सभी मतवाद वर्तमान समय में संसार में सर्वत्र प्रतिष्ठा लाभ कर रहे हैं।

परन्तु यह भी अनिवार्य नहीं है, और संघ के भ्रातृ-गणों में से आपसे किसी ने यह न कहा होगा कि आप गुरु-पूजा अवश्य कीजिये। नहीं-नहीं-नहीं। परन्तु उसके साथ ही हमें यह भी अधिकार नहीं है कि किसी दूसरे की पूजा को रोकें। क्यों? क्योंकि ऐसा करने से इस अद्वितीय समाज का—जिसकी संसार में उपमा नहीं पाई जा सकती—पतन हो जायगा। दस मत और दस विचार के दस मनुष्य मेल से रह रहे हैं। दीवानजी, जरा ठहरिये, ईश्वर दयालु और महान् है, अभी आप बहुत कुछ देखेंगे।

हम केवल सब धर्मों को सहन ही नहीं करते, वरन् उन्हें स्वीकार भी करते हैं, और ईश्वर की सहायता से मैं सारे संसार में इसका उपदेश देने का प्रयत्न कर रहा हूँ।

प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक राष्ट्र को बड़ा बनाने के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—

१. सौजन्य की शक्ति में विश्वास।

२. ईर्ष्या और सन्देह का अभाव।

३. जो धर्म-पथ पर चलने में, और सत् कर्म करने में संलग्न हो उसकी सहायता करना।

क्या कारण था कि हिन्दू राष्ट्र अपनी अद्भुत बुद्धि और गुण रखते हुए भी टुकड़े-टुकड़े हो गया? मैं इसका उत्तर दूँगा—ईर्ष्या। कभी भी कोई जाति एक दूसरे से क्षुद्र भाव से ईर्ष्या करनेवाली, या एक दूसरे के सुयश से ऐसी डाह करनेवाली न होगी जैसी कि यह दुर्भाग्य हिन्दू जाति और यदि आप कभी पश्चिम में आएँ, तो सब से पहले पश्चिमी राष्ट्रों में इसके अभाव का अनुभव करेंगे।

भारत में तीन मनुष्य एक साथ मिलकर पाँच मिनट के लिए भी कोई काम नहीं कर सकते। हर एक मनुष्य अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रयास करता है और अन्त में पूरा संगठन दुःख उठाता है। भगवन्! भगवन्! कब हम ईर्ष्या करना छोड़ेंगे? ऐसे राष्ट्र में, विशेषतः बंगाल में, एक ऐसे दल का निर्माण करना जो कि परस्पर मत-भेद रखते हुए भी अटल प्रेम से बँधे हुए हों, क्या यह अचम्भे की बात नहीं है? परन्तु दल बढ़ेगा। अनोखी उदारता के विचार के संग अनश्वर शक्ति और उन्नति भारत में फैलनी है।

घोर अज्ञान, द्वेष, जाति-भेद, पुराने अंध विश्वास और ईर्ष्या—जो इस दासों के राष्ट्र की पैतृक सम्पत्ति है, इनके होते हुए भी इन विचारों को भारत में फैलना है और इस राष्ट्र में संजीवनी शक्ति का संचार होना है।

इस महासमुद्र की सर्वव्यापी निश्चलता (Stagnation) के बीच आप उन इनेगिने उदार प्रकृति वालों में से हैं जो चट्टान की तरह खड़े हैं। सर्वदा परमात्मा का आसीस आप पर रहे।

सदैव आपका शुभचिन्तक
विवेकानन्द

(एक अमेरीकन मित्र को)

डेट्रोइट,
१५ मार्च १८९४

मैं व्याख्यान देते-देते और इस प्रकार के निरर्थक वाद से थक गया हूँ। सैकड़ों प्रकार के मानवी पशुओं से मिलते-मिलते मेरा मन अशान्त हो गया है। मैं आपको बताऊँ कि मेरे मनोनुकूल क्या हो सकता है। मैं लिख नहीं सकता हूँ, मैं बोल नहीं सकता हूँ, परन्तु मैं गम्भीर विचार कर सकता हूँ और जब मैं उत्तेजित होता हूँ तो अग्नि रूपी वचन बोल सकता हूँ। परन्तु यह होना चाहिये कुछ

चुने हुए—शब्द बहुत ही थोड़े और चुने हुए—लोगों के सामने। वे यदि चाहें तो मेरे विचारों को ले जाकर चारों ओर छितरा दें—परन्तु मैं यह नहीं कर सकता। यह तो न्याय्य कर्म का बटँवारा है, एक ही आदमी सोचने में और विचारों के प्रसार में सफल नहीं हो सकता। इस तरह के दिए हुए विचारों का मूल्य कुछ नहीं होता। मनुष्यों को सोचने में स्वतंत्रता होनी चाहिये, विशेषतः जब कि विचार आध्यात्मिक हों।

चिन्तन में स्वाधीनता, और मनुष्य यंत्र नहीं है—ये दो तत्व ही धर्म के सार स्वरूप हैं, इसी कारण नियमित विधि से यंत्र की तरह सोचना असम्भव है। हर चीज़ को यंत्र के तुल्य बनाने की चेष्टा पश्चिम की अभूतपूर्व समृद्धि का कारण हुआ है। और इसी चेष्टा ने धर्म को उसके द्वार से हटा दिया है। जो थोड़ा सा बचा है उसे भी पश्चिम ने नियम-बद्ध कसरत के रूप में पर्यवसित कर दिया है।

मैं वास्तव में "तूफ़ानी" बिलकुल नहीं हूँ बल्कि उसके विपरीत। जिस वस्तु को मैं चाहता हूँ वह यहाँ नहीं है, और मैं इस तूफ़ानी वातावरण को सहन करने में असमर्थ हूँ। पूर्णता का मार्ग यह है कि पूर्ण बनने का प्रयत्न करना, तथा कुछ थोड़े से स्त्री-पुरुषों को पूर्ण बनाने का प्रयत्न करना। कल्याण करने का मेरा यह विचार है कि कुछ असाधारण योग्यता के मनुष्यों का विकास न कि "भैंस के आगे बीन बजा कर" समय, स्वास्थ्य और शक्ति का नाश करना।

मेरा कितना जी चाहता है कि कुछ वर्षों तक मैं गूँगा हो जाऊँ और बिलकुल न बोलूँ। मैं स्वभाव से ही, स्वप्न के राज्य में विचरण

करनेवाला और कर्मविमुख हूँ। भौतिक वस्तुओं का स्पर्श मेरी दृष्टि को अस्थिर कर देता है और मुझे दुःख देता है, परन्तु हरि-इच्छा पूर्ण हो!

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

न्यूयार्क,

९ अप्रैल १८९४

प्रिय आलासिंगा,

सेक्रटरी साहब लिखते हैं कि मुझे हिन्दुस्तान वापस आना चाहिये, क्योंकि मेरा क्षेत्र वहीं है। इसमें कुछ सन्देह नहीं। किन्तु मेरे भाई, हम लोग एक ऐसा दीपक जलाने वाले हैं, जिसकी ज्योति से समग्र भारत में प्रकाश होगा। इसलिए जल्दी न करो। परमात्मा की कृपा से, सब काम हो जाएँगे। मैंने अमेरिका में बहुत से बड़े शहरों में व्याख्यान दिये हैं।........मेरे यहाँ बहुत से मित्र हैं, जिनमें से कई बहुत प्रभावशाली हैं। निस्सन्देह कट्टर पादड़ी मेरे विरुद्ध हैं और मुझसे मुठभेड़ करना कठिन जानकर वे हर प्रकार से मेरी निन्दा करते हैं और मुझे बदनाम करने और विरोध करने में भी नहीं हिचकिचाते। मेरे भाई, बिना अवरोध के कोई अच्छा काम नहीं हो सकता। जो अन्त तक उद्योग करते हैं उन्हें ही सफलता प्राप्त होती है।........मैं विश्वास रखता हूँ कि जब एक जाति, एक वेद,

शान्ति और एकता होगी, तब सत्य युग आएगा। वह सत्य युग का विचार ही भारत को पुनः जीवन प्रदान करेगा। विश्वास रखो।....

उठो लड़को, काम में लग जाओ!........चिरकाल तक सनातन धर्म का डंका बजेगा!........उठो उठो, मेरे पुत्रो! हमारी जीत निश्चित है।........जब हम एक बार काम आरम्भ कर लेंगे तब बड़ी भारी धूम मचेगी, परन्तु मैं बिना काम किये बात नहीं करना चाहता।........

साशीर्वाद, तुम्हारा,
विवेकानन्द

(श्रीयुत हरिदास बिहारीदास देसाई को)

शिकागो,
२० जून १८९४

प्रिय दीवानजी साहब,

आपका कृपा-पत्र आज मिला। मुझे बड़ा दुःख है कि मैंने उतावले और कठोर वचन कह कर आप जैसे उदार हृदय को दुःख दिया। आपका नम्र सुधार मुझे शिरोधार्य है, "मैं आपका पुत्र हूँ, मुझ विनीत को शिक्षा दीजिये"—गीता। परन्तु दीवानजी साहब, आप अच्छी तरह जानते हैं कि स्नेहवश मैंने ऐसा कहा। मुझे आपसे यह कहना पड़ेगा कि पीठ पीछे मेरी निन्दा करने वालों ने परोक्ष रूप

से मुझे लाभ नहीं पहुँचाया, वरन् उलटे उन्होंने मुझे अपरिमित रूप से हानि पहुँचाई है। अमेरीकन लोगों को यह बतलाने के लिए कि मैं उनका प्रतिनिधि हूँ हमारे हिन्दुओं ने सहायतार्थ उंगली तक नहीं उठाई; इसी कारण मुझे और भी हानि पहुँची। अमेरीकनों ने मुझसे जो सद्व्यवहार किया उसकी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए, और उन्हें यह बतलाने के लिए कि मैं उनका प्रतिनिधि हूँ, हमारे लोगों ने क्या एक शब्द द्वारा भी उन्हें धन्यवाद दिया?—अमेरीकनों से कह रहे हैं कि मैंने गेरुआ वस्त्र केवल अमेरीका में ही ग्रहण किया है और मैं एक सोलह आने ठग हूँ। जहाँ तक मेरे स्वागत का सम्बन्ध है इससे अमेरीका का राष्ट्र प्रभावित नहीं हुआ, परन्तु जहाँ तक धन से मेरी सहायता करने का सम्बन्ध था उसका यह विकट परिणाम हुआ कि उनके दानशील हाथों ने मेरी सहायता करनी छोड़ दी। और एक वर्ष से मैं यहाँ हूँ परन्तु भारत के एक भी नामी आदमी ने यह उचित न समझा कि वह अमेरीकनों को यह बताते कि मैं ठग नहीं हूँ। फिर ईसाई धर्मोपदेशक मेरे विरुद्ध हमेशा कुछ न कुछ ढूँढ़ते ही रहते हैं और यदि भारत के ईसाई समाचार-पत्रों में मेरे विरुद्ध कुछ भी निकले तो उसकी खोज में और उसे यहाँ छपवाने में वे मग्न रहते हैं। अब आपको यह जानना चाहिये कि यहाँ के लोग भारत के हिन्दू और ईसाइयों में क्या भेद है, यह बहुत थोड़े अंश में समझते हैं।

मेरा यहाँ आना मुख्यतः एक मेरे निजी उद्योग के लिए चन्दा जमा करने का था। मैं पुनः आपको सब सुनाता हूँ।

पश्चिम और पूर्व में सारा भेद यह है—वे लोग राष्ट्र हैं, हम नहीं। अर्थात् सभ्यता और शिक्षा वहाँ सामान्य है, वह जनसाधारण में प्रवेश कर गई है। उच्च श्रेणी के लोग भारत के और अमरीका के एक जैसे ही हैं। परन्तु नीचे के वर्गों में अपार भेद है। भारत पर विजय प्राप्त करना अँग्रेजों के लिये क्यों इतना सुगम था?—क्योंकि वे राष्ट्र थे, हम नहीं हैं। हमारे किसी बड़े आदमी की मृत्यु के पश्चात् हमें शताब्दियों तक राह देखनी पड़ती है तब कहीं किसी दूसरे श्रेष्ठ पुरुष का जन्म होता है, परन्तु वे तो एक के मरते ही दूसरे को उत्पन्न कर देते हैं। जब हमारे दीवानजी साहब न रहेंगे (भगवान् मेरे देश के कल्याण के लिए उन्हें दीर्घायु करे) तो उनके स्थान को भरने के लिए हमारे राष्ट्र को कठिनाई उठानी पड़ेगी—यह अब भी देखा जा सकता है क्योंकि आप अपने काम को इस समय भी नहीं छोड़ सकते हैं। श्रेष्ठ पुरुषों का अकाल है। वह क्यों?—क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों को भरती करने का उनका क्षेत्र विस्तीर्ण है, हमारा अति संकीर्ण। श्रेष्ठ पुरुषों की भरती के लिए तीन, चार या छः करोड़ के राष्ट्र की तुलना में तीस करोड़ के राष्ट्र का सब से छोटा क्षेत्र है, कारण यह कि उनके यहाँ शिक्षित स्त्री-पुरुषों की संख्या अत्यधिक है। मेरे कृपालु मित्र! मेरी बात उलटी न समझें; यह हमारे राष्ट्र का एक बड़ा दोष है और इसे मिटाना होगा।

जनता को शिक्षा दीजिये, उनकी उन्नति कीजिये, केवल इस प्रकार राष्ट्र बन सकता है। हमारे सुधारक यह नहीं देखना चाहते

कि घाव कहाँ है। परन्तु वे विधवाओं का विवाह करके राष्ट्र की रक्षा करना चाहते हैं। क्या आप समझते हैं कि विधवाओं को कितने पति मिलते हैं उसकी गिनती रखने से किसी राष्ट्र की रक्षा हो सकती है? इसमें हमारे धर्म का दोष नहीं है, क्योंकि एक मूर्ति कम हो या अधिक उसमें क्या अन्तर है? सारा दोष यह है कि वास्तविक राष्ट्र जो झोपड़ियों में रहता है, वह अपने व्यक्तित्व और पुरुषत्व को भूल गया है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई के पैरों के नीचे कुचले जाने से हिन्दू, यह समझने लगे हैं कि जिसके पास भी दो पैसे हों उसके पैर के नीचे रौंदे जाने के लिए ही उन्होंने जन्म लिया है। उनका खोया हुआ व्यक्तित्व उन्हें वापस देना है। उन्हें शिक्षित बनाना है। चाहे मूर्तियाँ रहें या न रहें, चाहे विधवाओं को पर्याप्त रूप से पति मिलें या न मिलें, चाहे जाति-भेद अच्छा हो या बुरा, मैं इन प्रश्नों में अपना सिर नहीं खपा सकता हूँ। हर एक को अपनी मुक्ति के लिए साधना स्वयं करनी चाहिये। हमारा धर्म है रसायनिक द्रव्यों को जुटाना और रवे बँध जाने का कार्य (Crystallisation) दैवी नियमों से होगा। हम उनके मस्तिष्क में विचार भर दें और शेष वे स्वयं कर लेंगे। अब इसका यह अर्थ है कि जनता को शिक्षा देनी चाहिये। इसमें यह कठिनाइयाँ हैं। एक कंगाल सरकार न कुछ कर सकती है, न करेगी, इसलिए उनसे हम कोई आशा नहीं रखते।

मान लीजिये कि प्रत्येक गाँव में हम मुफ्त पाठशालाएँ खोल सकें तब भी गरीब बालक आपके पाठशाला में आने की अपेक्षा हल चला

कर पेट भरना चाहेंगे। न हमारे पास धन है, न हम शिक्षा के पास उन्हें ला सकते हैं। यह समस्या निराशा से परिपूर्ण मालूम होती है, मैंने इसमें से निकलने का एक उपाय ढूंढ़ा है। वह यह है : यदि पर्वत मुहम्मद के पास नहीं आयेगा तो मुहम्मद को ही पर्वत के पास जाना पड़ेगा। यदि गरीब शिक्षा के समीप नहीं आ सकते हैं तो शिक्षा को खेतों में, कारखानों में और सब जगह गरीबों के पास जाना पड़ेगा। कैसे? तुमने मेरे भाइयों को देखा है। अब मैं ऐसे-ऐसे सैकड़ों स्वार्थहीन, गुणवान और शिक्षित पुरुषों को सारे भारत में से ला सकता हूँ। इन लोगों को गाँव-गाँव में जाने दो और द्वार-द्वार पर जाकर केवल धर्म ही नहीं किन्तु शिक्षा भी फैलाने दो। इसी तरह मेरे पास एक केन्द्र है जहाँ विधवाओं को संगठित करके उन्हें स्त्रियों का शिक्षक नियुक्त किया जा सकता है।

अब मान लीजिये कि ग्रामवासी दिन भर के काम के बाद आए हैं और पेड़ के नीचे या कहीं और बैठकर तमाखू पीने में और बातचीत में समय गवाँ रहे हैं। मान लीजिये कि दो तीन शिक्षित संन्यासी इन्हें वहाँ पकड़ पाते हैं, और मैजिक लैन्टर्न की सहायता से ज्योतिष सम्बन्धी, या दूसरे राष्ट्रों की अन्य कोई तस्वीरें अथवा ऐतिहासिक दृश्य दिखाते हैं। इस तरह से नक्शे, पृथ्वी के गोलाकार आदि की सहायता से—और सब मौखिक रूप में—इस प्रकार कितना काम हो सकता है दीवानजी! यह नहीं कि नेत्र ही केवल ज्ञान का द्वार हैं, कान भी वैसा ही हो सकता है। इस प्रकार उन्हें

विचार, आचार-व्यवहार और उन्नति की आशा मिलेगी। यहाँ हमारा काम समाप्त हो जाता है। शेष उन्हें स्वयं करने दो। संन्यासी इस त्याग, इस काम की ओर प्रेरित क्यों होंगे?—धार्मिक उत्साह से। हर एक नई धार्मिक लहर के लिए एक नए केन्द्र की आवश्यकता होती है। प्राचीन धर्म नए केन्द्र से पुनर्जीवित हो सकता है। धर्म-सिद्धान्त और नियमों को गोली मारो। वे कभी सफलता नहीं दिखाते। एक चरित्र, एक जीवन, एक केन्द्र, एक दैवी पुरुष पथ-प्रदर्शक बनेगा। और सब उपादान इस केन्द्र में केन्द्रित होकर, और फिर सब मिलकर अविरुद्ध गति से एक प्रचण्ड तरंग की तरह सब अपवित्रता दूर करते हुए समाज पर आ पड़ेंगे। फिर लकड़ी का टुकड़ा, लकड़ी के रेशे के संग सुगमता से काटा जा सकता है। इसी तरह प्राचीन हिन्दू धर्म का सुधार हिन्दू धर्म से ही हो सकता है, भाँति-भाँति के नए-नए सुधारों द्वारा नहीं। इसी के साथ-साथ सुधारकों को पूर्व और पश्चिम दोनों की संस्कृति का सम्मिश्रण अपने में ही दिखाना चाहिये। अब क्या आप नहीं समझते कि इस तरह के महान् आन्दोलन का मूल तत्व आपने देख लिया है? क्या आने वाली प्रचण्ड तरंग की धीमी गड़गड़ाहट की आवाज़ सुन ली है? वह केन्द्र, वह दैवी पुरुष जिसे मार्ग दिखाना था, उसका जन्म भारत में हो चुका है। वह महापुरुष श्रीरामकृष्ण परमहंस हैं और उनके चारों ओर यह संघ धीरे धीरे एकत्रित हो रहा है। वे सब काम करेंगे। अब दीवानजी महाराज, इस काम के

लिए धन और संगठन की आवश्यकता है—कम से कम इतने की जो इसके पहिए चक्कर खाने लगें। हिन्दुस्तान में हमें कौन धन देता?.........इसलिए दीवानजी महाराज, मैं इस पार अमरीका आया। आपको याद होगा कि सब धन की भिक्षा मैंने गरीबों से माँगी। धनवानों की भेंट को मैंने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे मेरे विचारों को समझने में अभी असमर्थ हैं। इस देश में एक वर्ष तक व्याख्यान देने के बाद भी, (मुझे अपने लिए तो कोई आवश्यकता नहीं है) मैं अपने कार्यारम्भ के लिए चन्दा जमा करने में निष्फल रहा। पहली बात यह कि यह वर्ष अमरीका में बहुत बुरा वर्ष है; उनके सहस्रों दरिद्र बेकार बैठे हैं। दूसरे, ईसाई धर्मोपदेशक और.........मेरे विचारों के खंडन करने में लगे रहते हैं। तीसरी बात यह कि एक वर्ष व्यतीत हो गया परन्तु हमारे देशवासियों हूँ। से इतना भी न किया गया कि वे अमेरीकन लोगों से कहते कि मैं यथार्थ में संन्यासी हूँ, ठग नहीं हूँ, और हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि इतने भी थोड़े से बचनों का व्यय वे न कर सके। शाबाश मेरे देशवासियो! दीवानजी साहब, मुझे उनसे प्रेम है। मानवी सहायता को मैं पैर से ठुकराता हूँ। पहाड़ों और घाटियों में, जंगल और मरुभूमि में जो मेरे संग रहा है, वह मेरा साथ न छोड़ेगा, मैं ऐसी आशा करता हूँ। नहीं तो मुझसे भी योग्य कोई वीर आत्मा भारत में किसी समय उठेगी जो इस काम को पूरा करेगी। इसलिये मैंने आपको सब बतला दिया है। दीवानजी, मेरे इस लम्बे पत्र के

लिए क्षमा कीजियेगा। मेरे उदार मित्र, जो थोड़े से मनुष्य मेरे लिए सहानुभूति रखते हैं उनमें से आप एक हैं। मेरे ऊपर यथार्थ कृपा रखिये। मेरे मित्र, आप चाहें तो मुझे काल्पनिक स्वप्न देखने वाला, और खयाली पुलाव पकानेवाला समझिये, परन्तु कमसे कम इस बात का विश्वास रखिये कि मैं खरा मनुष्य हूँ। सब से बड़ा अवगुण मुझमें यह है कि मुझे अपने देश से अत्यधिक प्रेम है। आप जिन जिन से प्रेम करते हैं परमात्मा की छाया सदा उन पर रहे। मैं आपके प्रति अपनी अटल कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। मैं अमित रूप से आपका ऋणी हूँ, केवल इसलिये नहीं कि आप मेरे मित्र हैं परन्तु इसलिये भी कि आपने आजीवन ईश्वर की और अपनी मातृभूमि की पूर्ण रूप से सेवा की है।

कृतज्ञतापूर्वक, सदैव आपका—

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

यू. एस. ए.

२७ सितम्बर १८९४

प्रिय आलासिंगा—

............मेरे व्याख्यानों और कहावतों की पुस्तकें जो कलकत्ते में छप रही हैं उनमें मैं एक बात पाता हूँ। इनमें से कुछ

इस तरह छापी जा रही हैं जिससे वह राजनीतिक विचारों की गंध से बसी हुई मालूम होती हैं। परन्तु मैं न राजनीतिज्ञ हूँ, न राजनीतिक आन्दोलन मचाने वालों में से हूँ। मैं केवल आत्मतत्व की चिन्ता करता हूँ—जब वह ठीक होगा तो सब काम अपने आप ठीक हो जायेंगे। इसलिये कलकत्ता-निवासियों को तुम सावधान कर दो कि मेरे लेखों या कहावतों पर राजनीतिक अर्थ का मिथ्या आरोप न करें। क्या व्यर्थ बकवास है! ....मैंने सुना है कि पादरी कालीचरण बैनर्जी ने ईसाई धर्मोपदेशकों के सामने व्याख्यान देते हुए कहा है कि मैं राजनीतिक प्रतिनिधि हूँ। यदि यह बात खुल्लम-खुल्ला कही गई थी तो उसी प्रकार बाबू से मेरी ओर से कहिये कि या तो वह कलकत्ते के किसी भी समाचार-पत्र में लिख कर प्रमाण द्वारा सिद्ध करें, नहीं तो अपने मूर्खतायुक्त कथन को वापस लें। यही उनकी चाल है। साधारणतः मैंने ईसाई शासन के विरुद्ध कुछ कठोर और खरे वचन कहे थे, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि मैं राजनीति की परवाह करता हूँ या मेरा उससे कोई सम्बन्ध है या ऐसी और कोई बात है। जो मेरे व्याख्यानों के उद्धृत वाक्य छापना कोई बड़ाई समझते हैं, और यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मैं राजनीति का उपदेशक हूँ उनके लिये मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ 'ऐसे मित्रों से मुझे बचाओ।'

मेरे मित्रों से कहना कि अविरुद्ध मौन ही मेरी निन्दा करने वालों के प्रति मेरा उत्तर है। यदि मैं उनसे बदला दूँ तब मैं उन्हीं के समतल हो जाऊँगा। उनसे कहना कि सत्य अपनी रक्षा स्वयं

करता है, और उन्हें मेरे लिए किसी से झगड़ा करने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें अभी बहुत कुछ सीखना है और वे अभी बच्चे हैं। वे अभी तक भोले सुनहले स्वप्न देख रहे हैं........केवल बालक !

यहाँ जनता के सम्मुख जीवन और समाचार-पत्रों की विख्याति से मुझे घृणा उत्पन्न हो गई है। मैं हिमालय की शान्ति में वापस जाने के लिए लालायित हूँ।

प्रेमपूर्वक सदैव आपका
विवेकानन्द

(श्रीयुत हरिदास विहारीदास देसाई को)

शिकागो,

सितम्बर १८९४

प्रिय दीवानजी साहब,

आपका कृपापत्र मुझे बहुत दिन हुए मिला था, परन्तु क्योंकि मुझे कुछ लिखने को नहीं था इसलिए उत्तर देने में मुझे देर हुई।

जी. डब्ल्यू-हेल के नाम आपका कृपापत्र मेरे लिए बहुत संतोषजनक था। इतने दिनों से मैं इस देश में सब तरफ़ घूमता रहा और सब चीज़ें देखता रहा। मैं इस अन्तिय निर्णय पर आया हूँ कि संसार में एक ही देश है जो धर्म को समझता है—और वह

है भारत, और हिन्दुओं के दोषों को देखते हुए भी नीति और आध्यात्मिकता में वे सब राष्ट्रों से बहुत बढ़े चढ़े हैं, और भारत के निःस्वार्थी पुत्रों के यथोचित ध्यान, उद्योग और प्रयत्न से पश्चिम के कुछ क्रियाशील और वीरता के गुणों का सम्मिश्रण हिन्दुओं के शान्त गुणों से करने से इस प्रकार के मनुष्य होंगे जो कि संसार में जितनी जातियाँ देखी गई हैं उनमें सर्वश्रेष्ट हों।

मैं नहीं जानता कि मैं कब तक लौटूँगा॰ परन्तु मैं समझता हूँ कि इस देश को मैंने पर्याप्त रूप से देख लिया है। इसलिए शीघ्र ही योरोप जाऊँगा और वहाँ से भारत। आपके व आपके भाइयों के प्रति मेरा प्रेम व कृतज्ञता।।

आपका शुभचिन्तक—

विवेकानन्द

(श्रीयुत वहेमिया चांद को)

वाशिङ्गटन,

२३ अक्टूबर १८९४

प्रिय वहेमिया चांद,

........इस वक्त तक मैं इनको अपने उपदेशकों के समान हो गया हूँ। मुझे और मेरी शिक्षा को ये बहुत पसन्द करते हैं.... मैं देश भर में शिक्षा और उपदेश देता हुआ घूमता फिरता हूँ

जैसे कि भारत में करता था। हज़ारों की संख्या में इन्होंने मेरी बातें सुनीं और मेरे विचारों को आग्रह के साथ ग्रहण किया। यह बहुत महंगा देश है परन्तु जहाँ जहाँ मैं जाता हूँ, भगवान मेरे लिए प्रबन्ध कर रखते हैं।

तुम्हें और वहाँ (लिमडी राजपूताना) के मेरे सब मित्रों को मेरा प्यार।

तुम्हारा
विवेकानन्द

(श्रीयुत हरिदास बिहारीदास देसाई को)

शिकागो,
१५ नवम्बर १८९४

प्रिय दीवानजी साहब,

आपका कृपापत्र मुझे मिला। आपने यहाँ भी मुझे याद रखा यह आपकी दया है। मैंने आपके नारायण हेमचन्द्र को नहीं देखा। मैं समझता हूँ कि वह अमेरिका में नहीं हैं। मैंने कई विचित्र दृश्य और ठाट-बाट की चीज़ें देखीं। आपके योरोप आने की सम्भावना है, मैं यह जानकर प्रसन्न हुआ। जिस तरह भी हो सके उसका लाभ उठाइये। संसार के दूसरे राष्ट्रों से पृथक रहना हमारी अवनति का कारण हुआ और शेष सब संसार के प्रवाह में आजाना ही

उसको मिटाने का एक उपाय है। गति ही जीवन का लक्षण है। अमेरिका एक शानदार देश है। दरिद्रों और स्त्रियों का यह स्वर्ग है। इस देश में दरिद्र तो समझिये कोई है ही नहीं और कहीं भी संसार में स्त्रियाँ इतनी स्वतंत्र, इतनी शिक्षित और इतनी सभ्य नहीं हैं। वे समाज में सर्वशक्तिमान हैं।

यह एक बड़ी शिक्षा है। संन्यासी ने अपने संन्यास का कोई भी अंश नहीं खोया, यहाँ तक कि अपने रहने का तरीका भी नहीं खोया। इस सत्कारशील देश में हर घर मेरे लिए खुला है। जिस ईश्वर ने भारत में मुझे मार्ग दिखाया क्या वह मुझे यहाँ न मार्ग दिखाता और उसने दिखाया है।

आप कदाचित् यह न समझ सके होंगे कि अमेरीका में संन्यासी का क्या काम है, परन्तु यह आवश्यक था। क्योंकि संसार में परिचित होने के लिए आपका एक ही अधिकार है और वह है आपका धर्म और यह आवश्यक है कि हमारे धार्मिक पुरुष आदर्श रूप में परदेशों में भेजे जाएँ जिसमें दूसरे राष्ट्रों को मालूम हो कि भारत मरा नहीं है।

प्रतिनिधि रूप से कुछ लोगों को भारत से बाहर सब देशों में जाना चाहिये, कम से कम यह दिखलाने को कि आप लोग जङ्गली मनुष्य नहीं हैं। भारत में अपने घर में बैठे-बैठे शायद आपको इसकी आवश्यकता न मालूम होती हो परन्तु विश्वास रखिये कि आपके

राष्ट्र की बहुत सी बातें इस पर निर्भर हैं। और वह संन्यासी जिसे मनुष्यों का कल्याण करने का कोई भी विचार नहीं है पशु है, संन्यासी नहीं।

न तो मैं केवल दृश्य देखने वाला यात्री हूँ, न निरुद्योगी पर्यटक हूँ; परन्तु यदि आप जीवित रहेंगे तो मेरा कार्य देख पायँगे और आजीवन मुझे आशीर्वाद देंगे। श्रीमान द्विवेदी के लेख सभा के लिये बहुत बड़े थे और उन्हें छोटे करने पड़े।

मैं धर्म-महासभा में बोला था और क्या परिणाम हुआ वह मैं कुछ समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ जो, मेरे पास हैं, उनमें से उद्धृत करके लिखता हूँ। मैं अहंकार से नहीं कहता हूँ परन्तु आपके प्रेम के कारण, आपमें विश्वास करके मैं यह अवश्य कहूँगा कि किसी हिन्दू ने अमेरिका को ऐसा प्रभावित नहीं किया। और मेरे आने से यदि कुछ भी न हुआ तो इतना अवश्य हुआ कि अमेरिकनों को यह मालूम होगया कि भारत में अभी तक ऐसे मनुष्य उत्पन्न हो रहे हैं जिनके चरणों में सभ्य से सभ्य राष्ट्र नीति और धर्म का पाठ पढ़ सकते हैं। क्या आप नहीं समझते कि हिन्दू राष्ट्र को अपने संन्यासी यहाँ भेजने का यह पर्याप्त कारण है? आप विस्तारपूर्वक वीरचंद गांधी से सुनियेगा।

यह मैं पत्रिकाओं में से उद्धृत करता हूँ—"अधिकांश भाषण संक्षिप्त होते हुए भी वाक्पटु थे परन्तु किसी ने भी धर्म-महा-

सभा के भाव और परिमितता का इस ढंग से वर्णन नहीं किया जैसा कि हिन्दू संन्यासी ने। मैं उनका भाषण पूरा-पूरा उद्धृत करके देता हूँ परन्तु श्रोतागण पर उनका क्या प्रभाव हुआ, इसका मैं केवल संकेत कर सकता हूँ, क्योंकि वे दैवी शक्तिसम्पन्न वक्ता हैं। उनका शक्तिमान तेजस्वी मुख एवं उनके गेरुए वस्त्र, उनके उत्साह से भरे हुए वचन तथा उनके अमूल्य लय-सम्पन्न वाक्यों से कुछ कम आकर्षक न थे। (यहाँ भाषण विस्तारपूर्वक उद्धृत किया गया है)—"न्यूयार्क क्रिटिक"

"उनकी संस्कृति, उनकी वाक्पटुता, उनके मोहने वाले व्यक्तित्व ने हमें भारत की सभ्यता का एक नया ज्ञान दिया है। उनका सुन्दर तेजस्वी मुख, उनकी गम्भीर सुरीली आवाज़, जो कि एकदम ही मोहने वाली है, उसने गिरजे और क्लबों में इतनी बार उपदेश दिया है कि उनके धर्म से अब हम भी परिचित हो गए हैं। स्मरणार्थ किसी प्रकार के नोट्स न लेते हुए वे बोलते हैं, अपने तथ्य तथा निष्कर्ष को वे बड़े कलापूर्ण ढंग से एवं सचाई के साथ सम्मुख रखते हैं और उनके अन्तर की प्रेरणा उनके भाषण को कई बार अपूर्व वाक्पटुता से युक्त कर देती है।"

"निश्चय ही धर्म प्रतिनिधि सभा में विवेकानन्द सब से बड़े व्यक्ति हैं। उनको सुनने के बाद यह मालूम होता है कि इस शिक्षित राष्ट्र को धर्मोपदेशक भेजना कितनी मूर्खता है।"—हेरल्ड (यहाँ का सब से बड़ा समाचार पत्र)

अब मैं उद्धृत करना बंद करता हूँ नहीं तो आप मुझे कहीं घमंडी न समझ बैठें परन्तु आपके लिए इतना आवश्यक था, जो कि प्रायः कूपमण्डूक बने बैठे हैं, और संसार दूसरे स्थानों में किस गति से चल रहा है यह देखना ही नहीं चाहते। मेरे उदार मित्र, मेरा मतलब आपसे व्यक्तिशः नहीं है, परन्तु सामान्य रूप से हमारे राष्ट्र से है।

मैं यहाँ वैसा ही हूँ जैसा भारत में था। केवल यहाँ इस अति सभ्य देश में गुण ग्राहकता है, सहानुभूति है जो हमारे अशिक्षित मूर्ख स्वप्न में भी नहीं जान सकते। वहाँ हमारे स्वजन हम साधुओं को रोटी का टुकड़ा भी सिसक-सिसक कर देते हैं। यहाँ एक व्याख्यान के लिए वह एक हजार रुपया देने को और उस शिक्षा के लिए सदा कृतज्ञ रहने को तैयार हैं।

यह विदेशी लोग मेरा इतना आदर करते हैं जितना कि भारत में मेरा कभी न हुआ था। यदि मैं चाहूँ तो मैं अपना सारा जीवन भोग विलास की एक प्रचुर मात्रा में व्यतीत कर सकता हूँ परन्तु मैं संन्यासी हूँ और "हे भारत, तुम्हारे अवगुणों के होते हुए भी मैं तुमसे प्रेम करता हूँ"। इसीलिए कुछ महीनों के बाद मैं आऊँगा और धर्म का बीज बोता हुआ एक नगर से दूसरे नगर में बढ़ता चलूँगा जैसे कि मैं पहले करता था, यद्यपि उन लोगों में प्रचार करूँगा जो न कृतज्ञता जानते हैं, न गुणों का आदर कर सकते हैं।

मैं अपने राष्ट्र की जब भिक्षुक मनोवृत्ति, स्वार्थपरता, गुण-ग्राहकता का अभाव, मूर्खता तथा अकृतज्ञता की याद करता हूँ और यहाँ की सहायता, अतिथि-सत्कार, सहानुभूति और आदर जो मुझ जैसे दूसरे धर्म के प्रतिनिधि को अमेरिकनों ने दिखाया—उससे तुलना करता हूँ तो मैं लज्जित हो जाता हूँ। इसलिए अपने देश से निकलो, दूसरों को देख कर उन्हें अपने आप से मिलाओ।

अब इन उद्धृत लेखों के बाद क्या आप समझते हैं कि संन्यासियों को अमेरिका भेजना उपयुक्त है या नहीं।

कृपा करके इन्हें न छापियेगा। मुझे यहाँ अपकर्म द्वारा अपना नाम करवाने से वैसी ही घृणा है जैसी भारत में थी।

मैं ईश्वर का कार्य कर रहा हूँ और जहाँ वह मुझे ले जाएगा मैं जाऊँगा। मूकं करोति वाचालं इत्यादि—वह जो गूंगे को वाचाल बनाता है और पंगु को पहाड़ पर से लंघाता है, वह मेरी सहायता करेगा। मानवी सहायता की मैं परवाह नहीं करता; यदि ईश्वर उचित समझेगा तो वह भारत में, अमेरिका में या उत्तरी ध्रुव स्थान में भी मेरी सहायता करेगा। यदि वह सहायता नहीं करेगा तब कोई भी नहीं कर सकता है। भगवान् की सदा जय हो।

आशीर्वाद पूर्वक तुम्हारा,

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

३० नवम्बर १८९४

प्रिय आलासिंगा,

....हमें अपनी धार्मिक संस्था के आर्थिक भाग को प्रणालीबद्ध करना चाहिये, परन्तु आध्यात्मिक विषय में हमें यह प्रयत्न करना उचित है कि सम्प्रदाय न बनने पाए........

यह विचार रखते हुए कि श्रीरामकृष्ण कौनसा कार्य करने तथा क्या सिखाने आए थे, यदि उनका कोई वास्तविक जीवन लिख सकता है, तो लिखने दो; अन्यथा नहीं। उनका जीवन और कथन बिगाड़ना उसके लिये उचित नहीं है। यदि किड़ी उनके प्रेम, उनके ज्ञान, उनका सर्वधर्म-समन्वय आदि सम्बन्धी कथाओं एवं उनके अन्यान्य उपदेशों का अनुवाद कर सकता है, तो करने दो। उनके जीवन-चरित का विषय इस प्रकार है: श्रीरामकृष्ण का जीवन एक असाधारण ज्योतिर्मय दीपक है, जिसके प्रकाश से हिन्दू धर्म के विभिन्न अंग एवं आशय समझ में आ सकते हैं। शास्त्रों में जो सब ज्ञान मतवाद के रूप में हैं उसका वे प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप थे। ऋषि और अवतार हमें जो वास्तविक शिक्षा देना चाहते थे, उसे उन्होंने अपने जीवन द्वारा दिखा दिया है। शास्त्र मतवाद मात्र हैं—और श्रीरामकृष्ण हैं उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति। उन्होंने ५१ वर्ष में पांच हज़ार वर्ष का जातीय आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया

और इस तरह से वह भविष्य की सन्तान के लिए अपने आपको एक शिक्षाप्रद उदाहरण बना गए। विभिन्न मत एक एक अवस्था या क्रम मात्र है—उनके इस सिद्धान्त से वेदों का अर्थ समझ में आ सकता है और शास्त्रों में सामञ्जस्य स्थापित हो सकता है। दूसरे धर्म या मत के लिए हमें केवल सहनशीलता का प्रयोग नहीं करना चाहिये, परन्तु उन्हें स्वीकार कर प्रत्यक्ष जीवन में परिणत करना चाहिये। सत्य ही सब धर्मों की नींव है। अब इस ढंग पर एक अत्यन्त मनोहर और सुन्दर जीवनी लिखी जा सकती है। अस्तु, सब काम अपने समय से होंगे।........स्वाधीनता से काम करते रहो। "जब भोजन पक जाता है, तब बहुत लोग खाने आ जाते हैं" सावधान रहो, काम करते जाओ।

आशीर्वाद पूर्वक सदैव तुम्हारा

विवेकानन्द

(श्रीयुत किड़ी को)

३० नवम्बर १८९४

प्रिय किड़ी,

मैं तुम्हें सलाह देता हूँ कि श्रीरामकृष्ण के विषय में जो अद्भुत कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं, उनसे और उनके मूर्ख लेखकों से किनारा काटो। वे कथाएँ सत्य हैं; परन्तु मैं यह निश्चय रूप से कहता हूँ कि वे मूर्ख उसमें गड़बड़ कर देंगे। जब श्रीरामकृष्ण के

जीवन में शिक्षा के लिए अपार ज्ञान-भण्डार भरा है, तो चमत्कार जैसी अनावश्यक बातों पर जोर देने से क्या लाभ? वह कुछ भी सिद्ध नहीं करते। जड़ के द्वारा चैतन्य को प्रमाणित नहीं कर सकते। ईश्वर, आत्मा का अस्तित्व या अमरत्व के साथ चमत्कारों का क्या सम्बन्ध है.........'रामकृष्ण' का उपदेश करो। जिससे तुम्हारी प्यास बुझी है, वह प्याला दूसरों को पिलाओ। अपने मस्तिष्क को आध्यात्मिक बकवाद से मत छेड़ो, और दूसरों की शान्ति अपनी धार्मिक कट्टरता से मत भंग करो।

आशीर्वाद पूर्वक सदैव तुम्हारा
विवेकानन्द

(श्रीयुत हरिदास बिहारीदास देसाई का)

शिकागो,
५४१ डिअरबोर्न ऐविन्यू,
नवम्बर १८९४

प्रिय दीवानजी,

आपका पत्र पाकर मैं अति आनन्दित हुआ। मैं आपका उपहास खूब समझा परन्तु मैं कोई बालक नहीं हूँ जो इस हँसी से टाल दिया जाऊँ। लीजिए अब मैं कुछ और लिखता हूँ, उसे भी ग्रहण कीजिए।

पश्चिमवालों के संगठन और मेल का बल ही उनकी सफलता का रहस्य है। यह तभी सम्भव है जब परस्पर भरोसा, सहयोग और सहायता का भाव हो। अब यहाँ वीरचन्द गांधी हैं, वह जैन जिसे आप बम्बई में अच्छी तरह जानते थे। यह आदमी इस विकट शीतकाल में भी निरामिष भोजन करता है, और अपने देश-वासियों और अपने धर्म की दृढ़ता से समर्थन करता है। यहाँ के लोगों को वह बहुत अच्छा लगता है परन्तु जिन लोगों ने उसे भेजा वे क्या कर रहे हैं? वे उसे जाति से च्युत करने की चेष्टा में लगे हैं। दासों में ही स्वभावतः ईर्ष्या उत्पन्न होती है और फिर वह ईर्ष्या ही उन्हें पतितावस्था में रखती है।

यहाँ........थे; वे सब चाह रहे थे कि व्याख्यान देके कुछ धन उपार्जन करें। कुछ उन्होंने किया भी, परन्तु मैंने उनसे अधिक सफलता प्राप्त की—क्यों—क्योंकि मैंने उनकी सफलता में कोई बाधा नहीं डाली। यह सब ईश्वर की इच्छा से ही हुआ। परन्तु यह सब..........को छोड़कर मेरे पीठपीछे मेरे लिए, इस देश में, भीषण झूठ रचकर प्रचार कर रहे हैं। अमेरिका-वासी ऐसी नीचता की ओर कभी दृष्टिपात न करेंगे।

........यदि कोई मनुष्य आगे बढ़ना चाहता है तो यहाँ सब उसकी सहायता करने को तैयार हैं। भारत में आप यत्न करके देखिये, यदि आप मेरी प्रशंसा में एक भी पंक्ति किसी समाचार-पत्र ('हिन्दू') में लिखियेगा तो दूसरे ही दिन सब मेरे विरुद्ध हो

जाएँगे। क्यों? यह दासों का स्वभाव है। वह अपने किसी भाई को अपने से तनिक भी बढ़ता हुआ देखकर सहन नहीं कर सकते.... क्या आप ऐसे क्षुद्रों की, स्वतंत्रता, स्वावलंबन और भ्रातृ-प्रेम में उद्बुद्ध इन लोगों के साथ तुलना कर सकते हैं? यू. एस. ए. के स्वतंत्र किए हुए दास—हबशी; हमारे देशवासियों के सब से निकट आते हैं। दक्षिण में ये दो करोड़ अब स्वतंत्र हैं। गोरे तो बहुत थोड़े हैं फिर भी वह उन्हें दबा कर रखते हैं। जब उन्हें राज नियम से सब अधिकार मिले हुए हैं तब क्यों इन दासों को स्वतंत्र करने के लिए भाई-भाई में खून की नदियाँ बहीं? वही अवगुण ईर्ष्या ही इसका कारण था। इनमें से एक भी हबशी अपने हबशी भाई का यश सुनने को या उसकी उन्नति देखने को तैयार न था। तुरन्त ही वे गोरों से मिलकर उसे कुचलने का यत्न करते हैं। आप इसको कभी समझ न सकेंगे जबतक भारत से बाहर न आयेंगे। जिनके पास बहुत सा धन है और मान है वे संसार को अपनी गति से यथावत् चलने दें, यह ठीक है परन्तु जिनका लाखों पददलित परिश्रमी ग़रीबों के हृदय के रक्त से भोगविलास में लालन पालन और शिक्षा हो रही है और फिर भी उनकी ओर ध्यान नहीं देते हैं उन्हें मैं विश्वासघातक कहता हूँ। कहाँ पर और इतिहास के किस काल में आपके धनवान पुरुषों ने, कुलीन पुरुषों ने, पुरोहित और राजाओं ने ग़रीबों की ओर ध्यान दिया था—वे ग़रीब जिन्हें कोल्हू के बैल की तरह पेलने से ही उनकी शक्ति संचित हुई थी।

परन्तु ईश्वर महान् है। आगे पीछे बदला मिलना ही था, और जिन्होंने ग़रीबों का रक्त चूसा, जिनकी शिक्षा उनके खर्चे पर हुई, जिनकी शक्ति उनकी दरिद्रता पर बनी, वे अपनी बारी में सैकड़ों और हज़ारों की गिनती में दास बना कर बेचे गए, उनकी सम्पत्ति एक सहस्र वर्ष से लुटी, और उनकी स्त्रियाँ और कन्याएँ अपमानित करी गईं। क्या आप समझते हैं कि यह अकारण ही हुआ?

भारत के ग़रीबों मे इतने मुसलमान क्यों हैं? यह सब मिथ्या बकवाद है कि तलवार की धार पर उन्होंने धर्म बदला।.... ज़मींदार और....पुरोहितों से अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए ऐसा हुआ और फलतः आप देखेंगे कि बंगाल के किसानों में मुसलमान हिन्दुओं से अधिक हैं, क्योंकि ज़मींदार भी अधिक हैं। कौन इन लाखों पददलित और पतितों को ऊपर उठाने का विचार करता है? कुछ हज़ार विश्वविद्यालय की परीक्षा की उपाधि लेने वालों से राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। कुछ धनवानों से राष्ट्र नहीं बनता। यह सच है कि हमारे पास सुअवसर भी कम हैं, परन्तु फिर भी तीस करोड़ को भोजन खिलाने और कपड़ा पहनाने के लिए, उन्हें आराम से रखने के लिए, नहीं नहीं, उन्हें भोग में भी रखने के लिये हमारे पास पर्याप्त अवसर हैं। नब्बे फी सैकड़ा हमारे लोग अशिक्षित हैं—कौन यह सोचता है? यह बाबू—यह देश-भक्त कहलाने वाले!

अब मैं आपको बताता हूँ—ईश्वर है—यह हँसी की बात नहीं है। वही हमारे जीवन का नियमन कर रहा है, और यद्यपि मैं

जानता हूँ कि दासों की जाति स्वभाव-दोष के कारण अपने हितकर्ता को ही काटती है, तब भी आप मेरे साथ प्रार्थना कीजिये—आप जो उन इने-गिने लोगों में से हैं जिन्हें सब अच्छे कामों से, सब महत्वपूर्ण उद्योगों से, सच्ची सहानुभूति है—जो सच्चे और उदार स्वभाव के मनुष्य हैं, हृदय और बुद्धि से सर्वथा निष्कपट—आप मेरे संग प्रार्थना कीजिये—"हे कृपामयी ज्योति! चारों ओर के घिरे हुए अंधकार में पथ-प्रदर्शन करो,—तमसो मा ज्योतिर्गमय!"

मुझे चिन्ता नहीं कि वे लोग क्या कहते हैं। मैं अपने ईश्वर से, अपने धर्म से, अपने देश से और सब से अधिक अपने आप से जो एक निर्धन भिक्षुक है, प्रेम करता हूँ। जो दरिद्र हैं, अशिक्षित हैं, दलित हैं, उनसे मैं प्रेम करता हूँ। उनके लिए मेरा हृदय द्रवित होता है। भगवान् ही जानते हैं, कहाँ तक द्रवित होता है। वही मुझे रास्ता दिखाएँगे। मैं मानवी सम्मान या छिद्रान्वेषण की तनिक भी पर्वा नहीं करता। मैं उनमें से अधिकांश को मूर्ख व शोर मचाने वाले बालक समझता हूँ। उन्होंने सहानुभूति तथा निःस्वार्थ प्रेम का मर्म नहीं जाना है।

मुझे श्रीरामकृष्ण के आशीर्वाद से वह अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई है। मैं अपनी छोटी सी मंडली के साथ काम करने का यत्न कर रहा हूँ, वे भी मेरे समान निर्धन भिक्षुक हैं। आपने उन्हें देखा है। दैवी कार्य हमेशा गरीबों व दीन मनुष्यों के द्वारा हुए हैं। आप मुझे

आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने प्रभु में, अपने गुरु में, और अपने आपमें श्रद्धा रखूँ।

प्रेम और सहानुभूति—यही एक मार्ग है। प्रेम ही एक उपासना है।

प्रभु आपकी और आपके स्वजनों की सदा सहायता करें।

प्रार्थना और आशीष सहित
विवेकानन्द।

यू. एस. ए.
२६ दिसम्बर १८९४

भाग्यवान और प्रियतम,

मेरे सम्बन्ध में थोड़े थोड़े दिनों बाद मिशनरी पत्रिकाओं में (मैं सुनता हूँ) दोषारोपण किया जाता है; परन्तु उन्हें पढ़ने की मुझे कोई इच्छा नहीं है। यदि तुम भारत की कुछ ऐसी पत्रिकाएँ भेजोगे, तो मैं उन्हें भी रद्दी कागज की टोकरी में डाल दूँगा। हमारे काम के लिए थोड़े से आन्दोलन की आवश्यकता थी; वह अब काफी हो चुका है। मेरे विषय में लोग क्या कहते हैं, इसकी ओर ध्यान न दो, चाहे वे अच्छा कहें या बुरा। तुम अपने काम में लगे रहो और याद रखो कि "भलाई करने वाले को कभी बुराई नहीं मिलती।"
"न ही कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति"—गीता

यहाँ के लोग दिन प्रति दिन मुझे मानने लगे हैं। सब काम धीरे धीरे होंगे........मैं तुम्हें पहले भी लिख चुका हूँ और फिर लिखता हूँ कि समाचार-पत्रों की प्रशंसा या निन्दा की मैं कुछ परवाह नहीं करूँगा। मैं उन पत्रों को अग्नि को अर्पण कर देता हूँ। तुम भी यही करो। समाचार-पत्रों की निन्दा और व्यर्थ बातों की ओर ध्यान न दो। निष्कपट रहो और अपने कर्तव्य का पालन करो। सब चीजें स्वयं ठीक हो जाएँगी। सत्य की विजय निश्चय है...... मिशनरी ईसाइयों के झूठे वर्णन की ओर तुम्हें ध्यान ही न देना चाहिए......पूर्ण मौन ही उनका सर्वोत्तम खण्डन है और मैं चाहता हूँ कि तुम भी मौन धारण करो।........श्री० सुब्रह्मण्य अय्यर को अपनी सभा का सभापति बना लो। मेरे जानने वालों में वे एक परम उदार और अत्यन्त साफ दिल के आदमी हैं और उनमें बुद्धि और हृदय का परम सुन्दर सम्मिश्रण है। काम में आगे बढ़ो और मेरे ऊपर ज्यादा भरोसा न करो........अपने लिए मैं नहीं कह सकता कि मैं कब वापस आऊँगा। मैं यहाँ और भारत दोनों में काम कर रहा हूँ........

तुम सब को मेरा प्यार।

आशीर्वाद पूर्वक सदैव तुम्हारा

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

शिकागो,
५४१ डियरबोर्न ऐवेन्यू
१८९४

प्रिय आलासिंगा,

तुम्हारा पत्र अभी मिला........इस देश में दो तीन साल तक व्याख्यान देने से धन संग्रह किया जा सकता है। मैंने कुछ यत्न किया है, और यद्यपि यहाँ जनसाधारण में मेरे काम का बहुत सम्मान है, फिर भी मुझे यह काम अत्यन्त अरुचिकर और मन को निम्न स्तर पर लाने वाला प्रतीत होता है........

भारतीय समाचार-पत्रों के विषय में जो तुम कहते हो, वह मैंने पढ़ा तथा उनकी आलोचना भी। उनका यह छिद्रान्वेषण स्वाभाविक ही है। प्रत्येक दास-जाति का मुख्य दोष ईर्ष्या होता है। ईर्ष्या और मेल का अभाव ही पराधीनता उत्पन्न करता है और उसे स्थायी बनाता है। इस कथन की सचाई तुम नहीं समझ सकते हो, जब तक भारत से बाहर न जाओ। पश्चिमियों की सफलता का रहस्य यही सम्मिलन-शक्ति है, और उसका आधार है परस्पर विश्वास और गुणग्रहण। जितना ही कोई राष्ट्र निर्बल या कायर होगा, उतना ही यह अवगुण अधिक प्रकट होगा........परन्तु मेरे पुत्र, तुम्हें पराधीन जाति से कुछ आशा न रखनी चाहिये। प्रायः मामला

निराशाजनक सा ही है; इस मामले को मैं तुम्हारे सामने पेश करता हूँ। सदाचार सम्बन्धी जिनकी उच्च अभिलाषा मर चुकी है, भविष्यत् उन्नति के लिए जो बिलकुल चेष्टा नहीं करते और भलाई करने वाले को धर दबाने में जो हमेशा तत्पर हैं—ऐसे मृत जड़पिण्डों के भीतर क्या तुम प्राण-सञ्चार कर सकते हो? क्या तुम उस वैद्य की जगह ले सकते हो, जो लातें मारते हुए उद्दण्ड बच्चे के गले में दवाई डालने की कोशिश कर रहा हो?.........अमेरिकन और योरोपियन विदेश में अपने देशवासी की हमेशा सहायता करेगा....

मैं फिर तुम्हें याद दिलाता हूँ "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"—"तुझे कर्म का अधिकार है, फल का नहीं"। चट्टान के समान दृढ़ रहो। सत्य की हमेशा जय होती है। श्रीरामकृष्ण की सन्तान निष्कपट एवं सत्यनिष्ठ रहें, और शेष सब कुछ ठीक हो जाएगा। कदाचित् हमलोग उसका फल देखने के लिए जीवित न रहेंगे; परन्तु जैसे इस समय हम जीवित हैं, यह निःसन्देह है, वैसे ही शीघ्र या विलम्ब में इसका फल हमें निःसन्देह प्राप्त होगा, अवश्य होगा। भारत को नव-विद्युत-शक्ति की आवश्यकता है, जो जातीय धमनी में नवीन बल उत्पन्न कर सके। यह काम हमेशा धीरे धीरे हुआ है और होगा। काम करने में सन्तुष्ट रहो और अपनी आत्मा को धोखा न दो। पूर्ण रूप से शुद्ध, दृढ़ और निष्कपट रहो और सब काम ठीक हो जाएँगे। अगर तुमने श्रीरामकृष्ण की सन्तान में कोई विशेषता देखी है, तो वह यह है—वे जो बात करते हैं

सच्चे दिल से करते हैं। यदि मैं ऐसे सौ आदमी भी भारत में लाकर उनमे काम आरम्भ करवा सकूँगा, तो मेरा काम पूरा हो जायगा और मैं शान्ति से मर सकूँगा। परन्तु क्या श्रेय है, यह परमात्मा ही जानता है। मूर्ख लोगों को व्यर्थ बकने दो। हम न तो सहायता ढूँढते हैं न उसे अस्वीकार करते हैं—हम तो उस परम पुरुष के दास हैं। क्षुद्र मनुष्यों के तुच्छ यत्न हमारी दृष्टि में न आने चाहिये। आगे बढ़ो! सैकड़ों युगों के उद्यम से चरित्र का गठन होता है। निराश न होओ। सत्य का एक शब्द भी लोप नहीं हो सकता। वह दीर्घ काल तक चाहे कूड़े के नीचे दब जाय परन्तु शीघ्र या देर से प्रकट होगा। सत्य अनश्वर है, गुण अनश्वर है और पवित्रता अनश्वर है, मुझे सच्चे मनुष्य की आवश्यकता है। मुझे धर्म बदलने वालों का समूह नहीं चाहिये। मेरे पुत्र, दृढ़ रहो। किसी की सहायता की परवाह न करो। मानवी सहायता से क्या ईश्वर अपरिमित रूप में बड़ा नहीं है? निर्मल रहो, ईश्वर पर विश्वास रखो; हमेशा उन पर निर्भर रहो और तुम ठीक मार्ग पर रहोगे। तुमसे कोई विरोध न कर सकेगा।........

आओ, हम प्रार्थना करें "तमसो मा ज्योतिर्गमय"—"कृपामयी ज्योति, रास्ता दिखाओ"........और अंधकार में से एक किरण दिखाई देगी, पथ-दर्शक कोई हाथ आगे बढ़ आएगा। मैं हमेशा तुम्हारे लिए प्रार्थना करता हूँ, तुम मेरे लिए करो। भारत के करोड़ों पददलितों के लिए दिन रात प्रत्येक आदमी प्रार्थना करे—उनके लिए

जो दारिद्र्य, पुरोहिताई के छल तथा प्रबलों के अत्याचारों से पीड़ित हैं। दिन रात उनके लिए प्रार्थना करो। मैं धनवान और उच्च श्रेणी की अपेक्षा इन पीड़ितों को ही धर्म का उपदेश देना पसन्द करता हूँ। मैं न कोई तत्त्व-जिज्ञासु हूँ, न दार्शनिक हूँ और न सिद्ध पुरुष हूँ। परन्तु मैं निर्धन हूँ और निर्धनों से प्रेम करता हूँ। मैं देखता हूँ कि इस देश में दरिद्र कौन कहलाते हैं और कितने उनसे सहानुभूति रखते हैं। भारत में और यहाँ महान् अन्तर है। बीस करोड़ नर-नारी जो सदा गरीबी और मूर्खता में फँसे हैं, उनके लिए कौन सहानुभूति रखता है? इससे निकलने का रास्ता कहाँ है? कौन उनके दुःख में दुखी है? वे अंधकार से प्रकाश में नहीं आ सकते, उन्हें शिक्षा नहीं प्राप्त होती है। उनको प्रकाश कौन देगा, कौन द्वार द्वार उन्हें शिक्षा देने के लिए घूमेगा? इन्हीं लोगों को अपना परमात्मा समझो—निरन्त इनका ध्यान करो, उनके लिए काम करो, उनके लिए निरन्तर प्रार्थना करो—ईश्वर तुम्हें मार्ग दिखाएगा। उसे मैं महात्मा कहता हूँ, जिसका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है, अन्यथा वह दुरात्मा है। आओ, हम लोग अपनी इच्छा-शक्ति को ऐक्य भाव से उनकी भलाई के लिए निरन्तर प्रार्थना में लगायें। हम अनजान, बिना सहानुभूति के, विलाप रहित, बिना कुछ काम किये मर जायँगे परन्तु एक भी विचार हमारा नष्ट न होगा। वह कभी न कभी फल लाएगा। मेरा हृदय ऐसा भरा है कि मैं अपने भावों को स्पष्ट समझा नहीं सकता। तुम जानते हो और उसकी कल्पना कर

सकते हो। जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं उनमें से हर एक आदमी को विश्वास-घातक ठहराऊँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुए हैं, परन्तु आज उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देते! वे लोग, जिन्होंने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया है और अब ठाठबाट से अकड़ कर चलते हैं, ये उन बीस करोड़ देशवासियों के लिए जो इस समय भूखे और असभ्य बने हुए हैं यदि कुछ न करें, तो वे लोग घृणा के योग्य हैं। मेरे भाइयो, हम लोग गरीब हैं। हम लोग साधारण मनुष्य हैं। परन्तु ऐसे ही लोग हमेशा उस परम पुरुष के यंत्र बनते हैं। परमात्मा का आशीर्वाद तुम पर हो।

अति प्रेम से—

विवेकानन्द

यू. एस. ए.

१८९४

प्रिय आलासिंगा,

एक पुरानी कहानी सुनो। एक निकम्मा भिखमंगा सड़क पर आवारागर्दी कर रहा था। इतने में ही उसने एक वृद्ध को किसी मकान के द्वार पर बैठा देखा। उसने रुक कर उससे किसी विशेष स्थान का पता पूछा और कहा, "अमुक ग्राम कितनी दूर है?"

बुड्ढा चुप रहा। भिखमंगे ने कई बार प्रश्न किया; परन्तु उत्तर न मिला। अन्त में जब वह उकता कर वापस जाने लगा, तब बुड्ढे ने खड़े होकर कहा, "ग्राम यहाँ से एक मील है।" भिखमंगा कहने लगा —"तुम पहले क्यों नहीं बोले थे, जब मैंने तुमसे पूछा था?" बुड्ढे ने उत्तर दिया, "क्योंकि पहले तुमने जाने के लिए लापरवाही दिखाई थी और दुविधा में मालूम होते थे; परन्तु अब तुम उत्साह-पूर्वक आगे बढ़ रहे हो इसलिए अब तुम उत्तर पाने के अधिकारी हो गए हो।"

मेरे पुत्र, क्या तुम यह कहानी याद रखोगे? काम आरम्भ करो और बाकी सब कुछ हो जायगा। "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।"—गीता। "जो सब कुछ छोड़कर मेरे ही ऊपर भरोसा करता है, मेरा ही चिन्तन करता है उसकी आवश्यकताओं को मैं पूरा करता हूँ।" यह स्वप्न न समझो।

....इस समय काम को सेवा और उपदेश के रूप में आरम्भ करना चाहिये। मिलने का एक स्थान चुन लो, और प्रति सप्ताह वहाँ इकट्ठा होकर पूजा करो, और भाष्यों के साथ उपनिषदों को पढ़ो; और धीरे धीरे काम और अध्ययन करते जाओ। तत्परता से काम में लगने से सब हो जायगा।

अब काम करो! जि. जि. का स्वभाव भावप्रधान है। तुम्हारी समबुद्धि है; इसलिए दोनों संग संग काम करो, काम में लीन हो जाओ।

अभी काम का आरम्भ ही है। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी रक्षा करनी है। हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए अमेरिका की पूंजी पर भरोसा न करो। यह हमारा केवल मति भ्रम है। केन्द्र होना बहुत बड़ी बात है। मद्रास जैसे बड़े शहर में ऐसा स्थान प्राप्त करने का यत्न करो; और संजीवनी शक्ति का चारों ओर प्रसार करो। हलके हलके शुरू करो। थोड़े गृहस्थ प्रचारकों से श्री गणेश करो। धीरे धीरे वे लोग भी आने लगेंगे, जो इस काम के लिए अपना जीवन अर्पण कर देंगे। शासन करने वाले न बनो। वही सब में अच्छा शासन करता है जो यथायोग्य सेवा कर सकता है। मृत्यु पर्यन्त सत्पथ से विचलित न होओ; काम हम चाहते हैं। हमें धन, नाम और यश की चाह नहीं.... धीर होओ....मद्रास के लोगों को इस हेतु धन संचय करने लिए उत्साहित करने का यत्न करो; फिर काम शुरू करो........पूर्णतः स्वार्थहीन रहो और तुम्हारी सफलता निश्चित है।

मेरी सन्तान. को आवश्यकता होने पर, और अपने कार्य की सिद्धि के लिए आग में कूदने को भी तैयार रहना चाहिये। इस समय यही रट है—काम, काम, काम। बाद में किसी समय काम रोक कर किसने कितना किया है यह देखेंगे। धैर्य, अध्यवसाय और पवित्रता चाहिये।

....मैं अभी हिन्दू धर्म पर कोई पुस्तक नहीं लिख रहा हूँ। मैं केवल अपने विचारों को स्मरणार्थ लिख लेता हूँ। मुझे मालूम नहीं कि मैं उन्हें कभी प्रकाशित कराऊँगा या नहीं। किताबों में क्या धरा

है ? दुनिया पहले ही बहुत मूर्खता से भरी है। यदि तुम वेदान्त के आधार पर एक पत्रिका निकाल सको, तो हमारे प्रयोजन में सहायता मिले। दूसरों में दोष न निकालो, अपना संदेशा दो। जो तुम्हें सिखाना है, सिखाओ और फिर रुक जाओ। शेष परमात्मा जानता है।

मुझे और समाचार-पत्र न भेजो। जो ईसाई मिशनरी मेरी निन्दा करते हैं, उसकी ओर मैं ध्यान नहीं देता, और इसलिए जनता में मेरा अधिक सम्मान है।

....यदि तुम सचमुच मेरी सन्तान हो, तो तुम किसी वस्तु से न डरोगे, और किसी बात पर न रुकोगे। तुम सिंह के समान होगे। हमें भारत को और पूरे संसार को जागृत करना है। कायरता को पास न आने दो। मैं अस्वीकृति न सुनूँगा। तुम समझते हो ? मृत्यु पर्यन्त सत्य-पथ पर अटल रहो। ....इसका रहस्य है गुरु-भक्ति। मृत्यु पर्यन्त गुरु में विश्वास। यह तुममें है ? मैं दिल से विश्वास करता हूँ कि है, और तुम जानते हो कि मुझे तुम पर भरोसा है— इसलिए काम करो। तुम अवश्य सिद्धि प्राप्त करोगे। तुम्हें पद पद पर मेरा आशीर्वाद है। मेरी प्रार्थना तुम्हारे साथ रहेगी। मेल से काम करो। हर एक के संग सहनशील हो। सब से मुझे प्रेम है। मैं तुम्हारी रखवाली कर रहा हूँ। आगे बढ़ो! आगे बढ़ो! अभी तो आरम्भ ही है। क्या तुम जानते हो कि मेरा यहाँ थोड़ा सा भी काम भारत में बड़ी ध्वनि उत्पन्न करता है ? मैं यहाँ से जल्दी नहीं लौटूँगा। मेरा विचार स्थायी रूप में यहाँ कुछ कर जाने का है, और

इस लक्ष्य को अपने आगे रखकर मैं प्रतिदिन काम कर रहा हूँ। अमेरिकावासियों का मैं विश्वास-पात्र बनता जा रहा हूँ।.................. अपने हृदय और आशाओं को संसार के समान विस्तीर्ण कर दो। संस्कृत का अध्ययन करो, विशेषकर वेदान्त के तीनों भाष्यों का। तैयार रहो, मैंने भविष्य के लिए बहुत सी तदबीरें सोची हैं। आकर्षक वक्ता बनने का यत्न करो। यदि तुममें विश्वास होगा, तो सब चीजें तुम्हें मिल जायँगी। इसलिए 'क—' से कह दो, बल्कि वहाँ के मेरे सभी बच्चों से कह दो। समय पाकर वे बड़े बड़े काम करेंगे, जिसे देखकर संसार आश्चर्य करेगा। निराश न होओ और काम करो। मैं देखूँ तुम क्या कर सकते हो........अपने जीवन के ध्येय पर दृढ़ रहो। अभी तुमसे बहुत आशा है, इसलिए आगे बढ़ो और पहले से अच्छा काम करो।

...लोगों से लड़ाई न करो; किसी को तुम्हारी ओर से वैर-भाव उत्पन्न न हो। यदि अमुक मनुष्य ईसाई बनता है तो हम क्यों बुरा मानें? जो धर्म उन्हें अपने मन के अनुकूल जान पड़ता है, उसका अनुगामी उन्हें बनने दो। वादविवाद में तुम क्यों सम्मिलित होगे? लोगों के भिन्न भिन्न मतों को सहन कर लो। सहनशीलता, पवित्रता और उद्योग की जीत होगी।

तुम्हारा,

विवेकानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द को)

१८९४.

प्रिय अखण्डानन्द,—

मैं तुम्हारा पत्र पाकर अति प्रसन्न हुआ। मेरे लिए यह बड़े हर्ष की बात है कि खेतड़ी में रहकर तुमने अपने स्वास्थ्य को बहुत कुछ ठीक कर लिया है।

भाई तारक ने मद्रास में बहुत काम किया है। यह बड़ा आनन्द-दायक समाचार है। मैंने मद्रास के लोगों से उनकी बड़ी प्रशंसा सुनी है।

राजपूताने के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले ठाकुरों में आध्यात्मिकता और परोपकार के भाव जागृत करने का प्रयत्न करो। हमें काम करना है और काम आलस्य में बैठे-बैठे नहीं हो सकता। मलसिसर, अलसिसर, और जो वहाँ के और 'सर' है वहाँ हो आया करो। और सावधानी से संस्कृत और अँग्रेज़ी का अध्ययन करो। मैं अनुमान करता हूँ कि गुणनिधि पंजाब में होगा। उसे मेरा विशेष प्रेम लिख भेजना और उसे खेतड़ी बुला लो। उसकी सहायता से तुम संस्कृत पढ़ो और उसे अंग्रेज़ी पढ़ाओ। उसका पता भी मुझे अवश्य लिखना।

खेतड़ी नगर के गरीब और नीच जातियों में द्वार-द्वार जाओ और उन्हें धर्म का उपदेश दो। उन्हें भूगोल तथा अन्य ऐसे विषयों की मौखिक शिक्षा दो। आलस्य में बैठकर, राजप्रसाद खाकर और "हे प्रभु रामकृष्ण" कहने से कोई लाभ नहीं हो

सकता—जब तक कि गरीबों का कुछ कल्याण न करो। बीच बीच में अन्यान्य गाँवों में भी जाकर धर्मोपदेश करो, शिक्षा-दीक्षा दो। कर्म, उपासना और ज्ञान—पहले कर्म, उससे तुम्हारा मन शुद्ध हो जायगा, नहीं तो सब चीजें निष्फल होंगी जैसे कि यज्ञ की अग्नि में आहुति देने के बदले राख के ढेर पर आहुति निष्फल होती है। जब गुणनिधि आजाय तब राजपूताने के प्रत्येक गाँव में गरीबों और कंगालों क द्वार-द्वार पर घूमो। यदि लोग तुम्हारे भोजन में दोष लगायें तो उसे तुरन्त त्याग दो। लोक-हित के लिए घास खाना भी अच्छा है। गेरुआ वस्त्र भोग के लिए नहीं है। यह वीर कार्य का झंडा है। अपने शरीर, मन और वाणी को "संसार के कल्याण" के लिए अर्पण करो। तुमने पढ़ा है "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव" —*अपनी माता को ईश्वर समझो, अपने पिता को ईश्वर समझो*— परन्तु मैं कहता हूँ "दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव"—गरीब, निरक्षर, मूर्ख और दुखी—इन्हें अपना ईश्वर मानो। इनकी सेवा करना ही परम धर्म समझो। आशीर्वाद पूर्वक सदैव तुम्हारा,

विवेकानन्द

(अनागरिक धर्मपाल को)

यू. एस. ए.

१८९४

प्रिय धर्मपाल,

....*पिछले शीत काल में मैंने इस देश में बहुत भ्रमण किया* यद्यपि वह ऋतु कष्टदायक थी। मैं समझा था कि वह असह्य होगा

परन्तु अन्त में मैंने ऐसा न पाया।....... मैं आशा करता हूँ कि आपके उदार काम में सफलता प्राप्त होगी। जो 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' के हेतु आये थे उनके आप सुयोग्य दास हैं।

....जिस ईसाई धर्म का भारत में उपदेश होता है वह उस ईसाई धर्म से, जो यहाँ देखने में आता है, सर्वथा भिन्न है। धर्मपाल, आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इस देश के एपिसकोपल व प्रेसबिटीरियन गिरजों के पादरियों में मेरे भी मित्र हैं जो कि अपने धर्म में उतने ही उदार और निष्कपट हैं जितने कि आप अपने धर्म में हैं। असली आध्यात्मिक मनुष्य भी जगह उदार होता है। उसका प्रेम उसे विवश कर देता है। जिनका धर्म व्यापार होता है वे संसार की स्पर्धा, उसकी लड़ाकू और स्वार्थी चाल को धर्म में लाने के कारण संकीर्ण और धूर्त होने पर विवश हो जाते हैं।

भ्रातृप्रेम से सदैव आपका,

विवेकानन्द

(स्वामी अभेदानन्द को)

यू. एस. ए.

१८९४

प्रिय काली,

तुम्हारे पत्र में जो कुछ समाचार मुझे मिले उसके लिए धन्यवाद! जिस तार के बारे में तुमने लिखा है उसके ट्रिब्यून में निकलने की

मुझे कोई सूचना नहीं मिली। छः महीने हुए मैंने शिकागो छोड़ा था और अभी तक मुझे वहाँ लौटने का समय नहीं मिला। इसलिए वहाँ के हाल की मैं बराबर खबर न रख सका। तुमने बड़ा कष्ट उठाया उसके लिए यथोचित धन्यवाद मैं किस प्रकार दूँ ? तुम सब ने काम करने में एक आश्चर्य जनक योग्यता दिखाई है। श्रीरामकृष्ण के वचन कैसे मिथ्या सिद्ध हो सकते हैं ?—तुम्हारा भाव अद्वितीय है। ....के विषय में मैं पहले ही लिख चुका हूँ। श्रीरामकृष्ण की कृपा से कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसका पता न लग सके। वह चाहे किसी सम्प्रदाय की नींव डाले या कुछ और करे, इसमें क्या हानि है ? शिवा वः सन्तु पन्थानः—"तुम्हारा पथ कल्याणमय हो"। दूसरी बात यह कि तुम्हारे पत्र का अभिप्राय मैं समझ न सका। हम सभों के लिए मठ बनाने को मैं अपना चन्दा जमा करूँगा और यदि इस बात के लिए लोग मेरी निन्दा करें तो मेरी समझ में नहीं आता कि इसमें हमें बुरा या भला मानने का क्या कारण है ? तुम अपने मन के भाव को उच्च और स्थिर रखो, तुम्हें कोई हानि न पहुँचेगी। तुम लोगों को आपस में अत्यन्त प्रेम का भाव हो, और जनता की निन्दा के लिए उदासीनता का भाव हो इतना ही पर्याप्त है। काली-कृष्ण बाबू को इन विचारों के लिए अगाध प्रेम है और वे महापुरुष हैं। कृपया मेरा विशेष रूप से स्नेह उन्हें पहुँचा दीजियेगा। जब तक तुम लोगों में भेद-भाव न हो ईश्वर की कृपा से मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारे लिए कोई भी भय न होगा, "रणे वने पर्वत-

मस्तके वा—चाहे रण में; चाहे वन में, चाहे पर्वत के शिखर पर"। "श्रेयांसि बहु विघ्नानि—श्रेष्ठ कार्य में अनेक विघ्न होते हैं"। यह तो होगा ही। मानसिक गम्भीरता में स्थित रहो। क्षुद्र जीव तुम्हारी क्या निन्दा कर रहे हैं उस पर तनिक भी ध्यान न दो। उदासीनता, उदासीनता, उदासीनता! मैं शशि (सन्याल) को विस्तारपूर्वक लिख चुका हूँ। कृपा करके समाचार-पत्र और उद्धृत लेख अब न भेजना। "भूसी उतारने वाली हथौड़ी को स्वर्ग ले जाओ वहाँ भी वह भूसी ही निकालेगी।"—जैसी कि एक बंगला कहावत है। यहाँ भी वैसा ही पैदल चलना मेरे भाग्य में है जैसा भारत में था, उस पर दूसरों का बोझा लादकर! मैं लोगों की किताबें बिकवाने के लिए यहाँ ग्राहक कहाँ से लाऊँ? मैं यहाँ अनेकों में एक हूँ, और कुछ नहीं। जो यहाँ के समाचार-पत्र आदि मेरे विषय में लिखते हैं उसे मैं अग्नि देव को समर्पित करता हूँ। तुम भी वही करो, यही उचित क्रिया है।

गुरु महाराज के काम के लिए जनता में कुछ प्रचार-प्रदर्शन की आवश्यकता थी। वह हो गया, यह अच्छा हुआ। अब तुम्हें किसी प्रकार भी विचारहीन जनता की बकवाद पर ध्यान देना उचित नहीं। चाहे मैं धन एकत्रित करूँ या और कुछ काम करूँ। जो कुछ भी मेरे विषय में कहा जाय, क्या क्षुद्र मनुष्यों का मतामत दैवी कार्य के मार्ग में रुकावट डाल सकता है? मेरे प्यारे भाई, तुम अभी बालक हो और मेरे बाल सफेद हुए जा रहे हैं। ऐसे लोगों के

मतामत को मैं कितना महत्व देता हूँ, तुम्हें इससे समझ जाना चाहिये। जब तक कि तुम कमर कसकर मेरे पीछे हो, चाहे सारा संसार एका करके भी हमारे विरुद्ध खड़ा हो जाय, हमें किसी बात का डर नहीं। मुझे इतना समझ में आता है कि मुझे बहुत ऊँचा भाव रखना पड़ेगा। मेरे विचार से, तुम्हें छोड़ कर मुझे और किसी को नहीं लिखना चाहिये। परन्तु यह तो बताओ कि गुणनिधि कहाँ है! उसे ढूँढने का यत्न करना और प्रेम से मठ में लाना। वह बड़ा विद्वान और सच्चा मनुष्य है। तुम जमीन के दो टुकड़े लेने की व्यवस्था करो और लोग जो कहते हैं कहने दो। चाहे जो मेरे पक्ष या विपक्ष में समाचार-पत्रों में लिखे उसे लिखने दो। तुम्हें उसकी ओर तनिक भी ध्यान न देना चाहिये और प्रिय भाई, मैं बार-बार तुमसे विनती करता हूँ कि टोकरे भर-भर के समाचार-पत्र मुझे न भेजा करो। इस समय विश्राम की बात तुम कैसे कर सकते हो। जब हम लोग इस शरीर को त्यागेंगे तभी हम विश्राम करेंगे। एक बार तो उत्सव की तैयारी ऐसे भाव में करो भाई, कि चारों ओर का प्रदेश उत्साह से चमक उठे! शाबाश! वाह वाह! प्रेम का प्रचण्ड प्रवाह तिरस्कार करने वालों के समूह को बहा देगा। तुम हाथी हो यह निश्चय है, चींटी के काटने से क्या डरते हो! ....

जो अभिनन्दन-पत्र तुमने मुझे भेजा था वह बहुत दिन हुए मिला। उसका उत्तर प्यारी बाबू को भेज दिया गया है।

अपने मन में याद रखो—आँखें गिनती में दो होती हैं और कान भी, परन्तु मुख एक ही होता है। उदासीनता, उदासीनता,

उदासीनता ! "न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति"—"हे तात, सुकर्म करनेवाला दुर्गति को कभी नहीं प्राप्त होता।" हा ! डर ! और भाई, हम डरें तो किससे ? इन ईसाई धर्मोपदेशकों ने और उनके साथियों ने चिल्ला-चिल्ला कर चुप्पी साध ली है—और सब दुनिया भी ऐसा ही करेगी।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु शतान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

"नीति में निपुण लोग चाहे प्रशंसा करें या निन्दा, लक्ष्मी चाहे अनुकूल हो या अपने मन माने मार्ग पर जाए, चाहे मृत्यु आज आए या सैकड़ों वर्षों के बाद, धैर्यवान कभी न्याय के पथ से विचलित नहीं होते।"

मन्द मति वालों से मिलने की कोई आवश्यकता नहीं है, न उनसे भिक्षा लेने की। ईश्वर सब चीजें देने वाला है और भविष्य में भी देता रहेगा। क्या भय है मेरे भाई ? श्रेष्ठ कर्म प्रबल विघ्नों को चीर कर सफलता प्राप्त करते हैं। हे वीर कुरु पौरुषमात्मनः, उपेक्षितव्या जनाः सुकृपणाः कामकाञ्चनवशगाः—"हे वीर, पुरुषार्थी बनो, वे कृपण लोग जो काम और काञ्चन के वश में हैं उनकी उपेक्षा करो।"—अब इस देश में मेरा पैर जम गया है इसलिए मुझे सहायता की आवश्यकता नहीं है, परन्तु तुम सब लोगों से मेरी एक यही प्रार्थना

है कि मेरी सहायता करने की उत्सुकता में, वह क्रियात्मक पुरुषार्थ जो भ्रातृप्रेम के कारण पैदा हुआ उसे तुम ईश्वर की सेवा में लगाओ। जब तक तुम निश्चय रूप से न जानो कि लाभ होगा तब तक अपने मन को न खोलो। बड़े से बड़े शत्रु के प्रति भी प्रिय और कल्याणकारी शब्दों को व्यवहार में लाओ। सुयश, धन और भोग की लालसा करना मनुष्य का स्वभाव ही है। प्रिय भाई, यदि वह दोनों पक्ष में फल दायक होती (अर्थात् ईश्वर और धन—God and Mammon—दोनों की सेवा में) तब सभी मनुष्य बड़ा उत्साह क्यों न दिखाते! परन्तु वही महात्मा काम कर सकता है जो दूसरों में परमाणु के बराबर गुण देखकर उसे पर्वत के समान मानता है और जिसे जगत की भलाई छोड़कर कोई भी इच्छा नहीं है—"परगुण-परमाणून् पर्वतीकृत्य, अपिच, त्रिभुवनमुपकार-श्रेणिभिः प्रीयमाणः" इत्यादि। इसलिये जिनकी मंद मति है, जिनकी बुद्धि अज्ञान में डूबी हुई है, और जो अनात्मा को ही सर्वस्व मानते हैं उन्हें अपनी बाल-क्रीड़ा करने दो। जब वे प्रबल कष्ट का अनुभव करेंगे तब वे उसी क्षण छोड़ देंगे। उन्हें चन्द्रमा पर थूकने दो वह थूक उन्हीं पर उलट कर पड़ेगी, शुभं भवतु तेषाम्। उनका कल्याण हो! यदि उनमें कुछ गुण हैं तब उनकी सफलता कौन रोक सकता है? परन्तु यदि ईर्ष्या के कारण झूठी शान है तब सब यत्न निष्फल होगा। हर मोहन ने मालाएँ भेजी हैं। अच्छा। परन्तु तुम्हें यह जानना चाहिये कि उस ढंग का धर्म जो हमारे देश में प्रचलित है वह यहाँ

नहीं चल सकता। उसे लोगों की रुचि के अनुकूल बनाना होगा। यदि तुम उनसे हिन्दू बनने को कहोगे तो वे तुमसे दूर भागेंगे, और तुमसे द्वेष करेंगे, जैसे कि हम यहाँ ईसाई धर्मोपदेशकों से करते हैं। उन्हें हिन्दू शास्त्रों के कुछ विचार प्रिय लगते हैं बस इतनी ही बात है। तुम्हें यह जानना चाहिये कि इससे अधिक कुछ नहीं है। पुरुषों में अधिकांश, धर्म के लिये मगज पच्ची नहीं करते। स्त्रियों को कुछ रुचि है। परन्तु बड़ी मात्रा में नहीं। कुछ सहस्र लोगों को अद्वैत मत में श्रद्धा है। परन्तु यदि धर्मग्रंथों की अस्पष्ट रीतियों, जाति-भेद या स्त्रियों की बात करोगे तो वे तुमसे किनारा करेंगे। सब काम धीरे-धीरे होते हैं। धीरज, पवित्रता और उद्योग।

तुम्हारा

विवेकानन्द

(स्वामी शिवानन्दजी को)

यू. एस. ए.
१८९४

प्रिय शिवानन्द,

तुम्हारा पत्र अभी मिला। कदाचित् तुम्हें मेरे पहले पत्र मिल चुके होंगे और तुम्हें मालूम हो गया होगा कि और कुछ सामान अमेरिका भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'।

समाचार-पत्रों की इस भिनभिनाहट ने निस्सन्देह मुझे प्रसिद्ध कर दिया है परन्तु इसका प्रभाव भारत में अधिक है और यहाँ कम। इसके विपरीत निरन्तर समाचार-पत्रों की घोषणाएँ ऊँचे वर्ग के मनुष्यों के मन में एक अरुचि सी पैदा कर देती है, अतएव जो हुई सो पर्याप्त है। अब तुम भारत में इन सभाओं के ढंग पर अपने आप को संगठित करने की चेष्टा करो। इस देश में तुम्हें कुछ और भेजने की आवश्यकता नहीं। धन के विषय में यह बात है कि मैंने माँ * के लिए मकान बनाने का संकल्प कर लिया है, क्योंकि स्त्रियों को उसकी पहले आवश्यकता है........माँ के स्थान के लिए मैं लगभग ७००० रुपये भेज सकता हूँ। यदि वह स्थान पहले सुरक्षित हो जाय तो मैं किसी बात की चिन्ता न करूँगा। मुझे आशा है कि इस देश से मुझे १६०० रुपये वार्षिक मिलते रहेंगे, जब मैं यहाँ से चला जाऊँगा तब भी। वह रुपया मैं स्त्रियों के स्थान के लिए रखूँगा तब वह स्थान बढ़ेगा। मैं तुम्हें स्थान प्राप्त करने के लिए पहले भी लिख चुका हूँ........

मैं इससे पहले ही भारत को लौट आता, परन्तु भारत में धन नहीं है। सहस्रों लोग श्रीरामकृष्ण देव का आदर करते हैं परन्तु कोई कौड़ी नहीं देता—यह है भारत !....तब तक किसी प्रकार मेल से रहो। संसार सिद्धान्तों की कुछ भी परवाह नहीं करता। वह मनुष्य ही को मानता है। जो मनुष्य उन्हें अच्छा लगेगा उसके वचन वे

* श्री शारदा देवी—श्रीरामकृष्ण देव की धर्म-पत्नी।

शान्ति से सुनेंगे, चाहे वे कैसे ही निरर्थक हों; परन्तु जो मनुष्य उन्हें अप्रिय होगा उसके वचन नहीं सुनेंगे। इस पर विचार करो और अपने आचरण में यथोचित परिवर्तन करो। सब बातें ठीक हो जाएँगी। यदि तुम नेता बनना चाहते हो तो सब के दास बनो। यह सच्चा रहस्य है। यदि तुम्हारे वचन भी कठोर होंगे तब भी तुम्हारा प्रेम स्वतः जान पड़ेगा। मनुष्य प्रेम को पहचानता है, चाहे वह किसी भी भाषा में प्रकट हो।

मेरे प्यारे भाई, श्रीरामकृष्ण देव ईश्वर के अवतार थे इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है, परन्तु तुम्हें उचित है कि तुम लोग उनके उपदेश की खोज उन्हें स्वयं करने दो—ये बातें उन्हें हठ से नहीं सिखाई जा सकतीं—यही केवल मेरा आक्षेप है।

लोगों को अपना मत प्रकट करने दो। हमें इसमें क्या आपत्ति है? श्रीरामकृष्ण देव का अध्ययन किये बिना वेद-वेदान्त, भागवत और अन्य पुराणों का महत्व समझना असम्भव है। उनका जीवन भारतीय धार्मिक विचार के समूह पर एक अनन्त शक्ति का तीव्र प्रकाश है। वेदों के और उनके ध्येय के वे जीवित भाष्य हैं, भारत के जातीय धार्मिक जीवन का एक समग्र कल्प उन्होंने एक जीवन में पूरा कर दिया था।

भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ ही था, यह हम बिलकुल निश्चित रूप से नहीं कह सकते; और बुद्ध तथा चैतन्य जैसे अवतार पुराने हैं; पर श्रीरामकृष्ण देव सब की अपेक्षा आधुनिक और सबसे

पूर्ण हैं—ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, उदारता और लोकहितैषा—इन सब गुणों के वे मूर्तस्वरूप हैं। किसी दूसरे के साथ क्या उनकी तुलना हो सकती है? जो उनके गुणों का आदर नहीं कर सकता है उसका जीवन व्यर्थ है। मैं परम भाग्यशाली हूँ कि मैं जन्म जन्मान्तर से उनका दास रहा हूँ। उनका एक शब्द भी मेरे लिए वेद-वेदान्त से अधिक मूल्यवान है। तस्य दासदासदासोऽहम्—अरे, मैं तो उनके दासों के दासों का दास हूँ। परन्तु क्षुद्र संकीर्णता उनके सिद्धान्तों को विरुद्ध है, उसीसे मुझे दुःख होता है। उनका नाम चाहे विस्मरण हो जाय परन्तु उनका उपदेश फलप्रद हो! क्यों, क्या वह नाम के दास थे? कुछ मछुओं और अनपढ़ लोगों ने ईसा मसीह को ईश्वर कहा था; परन्तु शिक्षित लोगों ने उन्हें मार डाला; अपने जीवन में बुद्ध देव ने बहुत से व्यापारियों और ग्वालों से सम्मान पाया; परन्तु श्रीरामकृष्ण देव अपने जीवन में पूजे गए थे—इसी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में—विश्वविद्यालय के असाधारण योग्यता रखने वाले विद्वानों ने उन्हें ईश्वर का अवतार माना......(कृष्ण, बुद्ध, क्राइस्ट इत्यादि) के विषय में केवल थोड़ी सी बातें लिखी गई हैं। बंगाली कहावत है कि "जिसके संग हम कभी नहीं रहे हैं उस व्यक्ति को आश्चर्य जनक गृहस्वामी होना ही चाहिए।" परन्तु यहाँ वह एक महापुरुष हैं जिनकी संगति में हम दिन-रात रहे हैं और फिर भी हम इनका उन सब से बढ़ा चढ़ा व्यक्तित्व मानते हैं। क्या तुम इस अद्भुत घटना को समझ सकते हो?

'माँ' के जीवन का विलक्षण महत्व तुम लोग अभी नहीं समझ सके हो—तुममें से एक भी नहीं, परन्तु धीरे-धीरे तुम जानोगे। शक्ति के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सब से अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति का निरादर होता है। उस अनुपम शक्ति को भारत में पुनः जाग्रत करने के लिए माँ का जन्म हुआ है, और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से गार्गी और मैत्रेयी का जन्म संसार में होगा। प्रिय भाई, अभी तुम बहुत थोड़ा समझते हो, परन्तु धीरे-धीरे तुम सब जान जाओगे। इसलिए मैं उनका मठ पहले चाहता हूँ............ शक्ति की कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। अमेरिका और योरोप में मैं क्या देखता हूँ?—शक्ति की उपासना। परन्तु अज्ञानवश वे उसकी उपासना इन्द्रिय-भोग द्वारा करते हैं। फिर कल्पना करो कि जो पवित्रता से सात्विक भाव द्वारा अपनी माता के रूप में उसे पूजेंगे वे कितने कल्याण को प्राप्त करेंगे! दिन पर दिन सब बातें मेरी समझ में आरही हैं। मेरी अन्तर्दृष्टि का धीरे-धीरे विकास हो रहा है। इसलिए हमें माँ का मठ पहले बनाना चाहिये। पहले माँ और उनकी पुत्रियाँ, फिर पिता और उनके पुत्र—क्या तुम यह समझ सकते हो? ....मेरे लिए माँ की कृपा पिता की कृपा से लाखों बार अधिक मूल्यवान है। माँ की कृपा, माँ का आशीष मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ है। कृपया मुझे क्षमा करो, मैं माँ के विषय में

कुछ कट्टर हूँ। परन्तु यदि माँ की आज्ञा होगी तो उनके भूत कुछ भी काम कर सकते हैं। अमेरिका के लिए प्रस्थान करने से पहले मैंने माँ को लिखा था कि वह मुझे आशीर्वाद दें। उनका आशीर्वाद आया और एक ही छलाँग में मैंने समुद्र पार कर लिया। यह देखा तुमने। इस विकट शीतकाल में मैं स्थान-स्थान में भाषण कर रहा हूँ और विषम बाधाओं से लड़ रहा हूँ जिसमें माँ के मठ के लिए कुछ धन एकत्रित हो सके........निरञ्जन की लठैये की सी वृत्ति है परन्तु उसे माँ के लिए बड़ी भक्ति है, और उसकी झक को मैं सहन कर सकता हूँ। वह अब बहुत ही आश्चर्य जनक काम कर रहा है। मैं सब खबर रखता हूँ। और तुमनें मद्रासियों के संग सहयोग करके बहुत अच्छा किया। प्रिय भाई, मुझे तुमसे बड़ी आशा है। तुम, सबको संग मिलकर काम करने के लिए संगठित करो। जैसे ही तुम माँ के लिए जमीन ले लोगे मैं सीधा भारत के लिए चल दूँगा। जमीन का टुकड़ा बड़ा होना चाहिये। शुरू में मिट्टी का घर होने दो, समय पर मैं सुन्दर भवन बनवा दूँगा। डरो नहीं।

मलेरिया का मुख्य कारण पानी होता है, क्यों नहीं तुम दो तीन फिल्टर बनाते हो? यदि तुम पहले पानी को उबाल लोगे, फिर छानोगे तब वह हानिकारक न होगा....कृपा करके दो बड़े 'पैसचर' के फिल्टर मोल लो जो कीटाणुओं से सुरक्षित हों। उसी में खाना पकाओ और पीने के काम में लाओ और तुम मलेरिया का नाम कभी

न सुनोगे। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो; काम, काम, काम—अभी तो काम का आरम्भ ही है।

सदैव तुम्हारा
विवेकानन्द

१८९४

प्रिय और प्रियतम,

....क्या तुम समझते हो कि भारत में कुछ धर्म बचा है? ज्ञान, भक्ति और योग तीनों पथ नष्ट हो चुके हैं और अब बचा है छुआ-छूत का धर्म—"मुझे मत छुओ!" "मुझे मत छुओ!" सारा संसार अपवित्र है, मैं ही केवल शुद्ध हूँ! सहज ब्रह्मज्ञान! वाह! हे भगवन! आज कल ब्रह्म न तो हृदय-गुफा में है, न सर्वोच्च लोक में, न सब जीवों में—अब वह भोजन के पात्र में ही है! पहले उदार हृदयवाले मनुष्य के लक्षण थे—त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीयमाणः—"सेवा के अनेक कामों से तीनों लोकों को प्रसन्न रखना" परन्तु अब है—मैं पवित्र हूँ और अब संसार अपवित्र, जाओ धन लाओ और मेरे चरणों पर अर्पित करो....वह बुद्धिमान साधु जो मुझसे कहता है कि मैं अपने उपदेश का काम बंद करके घर लौटूँ—उससे कहना....कि यह देश ही मेरा अधिकतर रूप से घर है—भारत में क्या रखा है? धर्म का आदर कौन करता है? विद्या का सम्मान कौन करता है?

घर जाना! घर कहाँ है! मुझे मुक्ति और भक्ति की चाह नहीं। लाखों नरकों में जाना मुझे स्वीकार है। वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः— "वसन्त की तरह लोक का हित करते हुए"—यह मेरा धर्म है, मैं आलसी, कठोर-हृदय, क्रूर और स्वार्थी मनुष्यों से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहता। वह बड़ा भाग्यवान होगा जो इस महान कार्य में सहायता करेगा।....कृपा करके सब को मेरा प्रेम का सन्देसा देना, मैं सब की सहायता चाहता हूँ। न धन का मूल्य है, न नाम का, न यश का, न विद्या का। केवल चरित्र ही कठिनाई रूपी पत्थर की दीवारों को छेद कर सकता है। इसे मन में याद रखो........

प्रेम से सदैव तुम्हारा
विवेकानन्द

(श्रीयुत जि. जि. नरसिंहाचारियर को)

शिकागो,
११ जनवरी १८९५

प्रिय जि. जि.,

तुम्हारा पत्र अभी मिला।........ अन्य धर्मों की अपेक्षा ईसाई धर्म की बड़ाई दिखाने के लिए धर्म-सभा (Parliament of Religions) की रचना हुई थी; परन्तु तत्वज्ञान से पुष्ट हिन्दुओं का धर्म, फिर भी अपने पद को समर्थन करने में विजयी हुआ। डॉक्टर

कैरोज और उस श्रेणी के लोग जो कि बड़े कट्टर हैं उनसे मैं सहायता की आशा नहीं रखता........भगवान ने मुझे इस देश में बहुत से मित्र दिए हैं और उनकी संख्या सदैव बढ़ती ही जाती है........ईश्वर उनका कल्याण करे। मैं बराबर न्यूयार्क और बोस्टन के बीच में यात्रा करता रहा। इस देश के यही दो बड़े केन्द्र हैं, जिनमें से बोस्टन की मस्तिष्क से तुलना की जा सकती है और न्यूयार्क की जेब से। दोनों स्थानों में साधारणतः से अधिक सफलता प्राप्त हुई है। मैं समाचार-पत्रों के वर्णन से उदासीन हूँ, इसलिए तुम यह आशा मुझसे न करो कि उनमें से किसी के उल्लेख मैं तुम्हें भेजूँगा। काम आरम्भ करने के लिए थोड़े से शोर की आवश्यकता थी, वह ज़रूरत से अधिक हो चुका है।

मैं मणी अय्यर को लिख चुका हूँ और तुम्हें आदेश दे चुका हूँ। अब तुम मुझे दिखाओ कि तुम क्या कर सकते हो। अब व्यर्थ बकवास का नहीं, असली काम का समय है; हिन्दुओं को अपनी बातों का काम से समर्थन करना है; यदि वे ऐसा नहीं कर सकते, तो वे किसी वस्तु के योग्य नहीं हैं। बस, इतनी ही बात है....मेरा क्या है, मैं तो सत्य की शिक्षा देना चाहता हूँ, चाहे वह यहाँ हो, या कहीं और!

तुम्हारे या मेरे अनुकूल या विरुद्ध लोग क्या कहते हैं, भविष्य में इस पर ध्यान न दो। काम करो, सिंह के समान बनो और परमात्मा तुम्हारा भला करेगा। मैं मरने तक निरंतर काम करूँगा

और मरकर भी संसार की भलाई के लिए काम करता रहूँगा। सत्य का प्रभाव असत्य की अपेक्षा अनन्त है; और उसी तरह से अच्छाई का। यदि तुममें ये गुण हैं, तो उनकी आकर्षण-शक्ति से ही तुम्हारा मार्ग साफ़ हो जायगा।

....सहस्रों सज्जन मेरा अति सम्मान करते हैं। तुम यह जानते हो; इसलिए भगवान पर भरोसा रखो। इस देश में धीरे-धीरे मैं ऐसा प्रभाव डाल रहा हूँ, जो समाचार-पत्रों के ढिंढोरा पीटने से नहीं हो सकता था....।

यह है चरित्र का प्रभाव, पवित्रता का प्रभाव, सत्य का प्रभाव, व्यक्तित्व का प्रभाव। जब तक ये गुण मुझमें हैं, तब तक चिन्ता का कुछ कारण नहीं; कोई मेरा बाल भी बाँका न कर सकेगा। यदि ये यत्न करेंगे, तो भी असफल होंगे....ऐसा भगवान ने कहा है।.... सिद्धान्त और पुस्तकों को छोड़ो। जीवन सर्वोच्च है और जनता के हृदय-स्पन्दन का यही एक मार्ग है—इसमें व्यक्तिगत आकर्षण होता है।....दिन प्रति दिन भगवान मेरी अन्तर्दृष्टि को तीव्र करते जा रहे हैं। काम करो, काम करो, काम करो,....व्यर्थ बकवाद को विश्राम करने दो, ईश्वर पर वार्तालाप करो। जीवन अतिशय अल्प है और झक्की तथा कपटी मनुष्यों की बातों में बिताने के लिए समय कहाँ?

हमेशा याद रखो कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी। इसी तरह प्रत्येक मनुष्य को भी अपनी-अपनी रक्षा करनी होगी। दूसरों से सहायता की आशा न रखो। कठिन परिश्रम से मैं

कभी-कभी थोड़ा सा रुपया तुम्हारे काम के लिए भेज सकूँगा; परन्तु इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता। यदि तुम्हें उसकी प्रतीक्षा करनी है, तो काम बंद कर दो। यह समझते रहो कि मेरे विचारों के लिए यह एक विशाल क्षेत्र है और मुझे इसकी परवाह नहीं है कि यहाँ के लोग हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हैं। जो ईश्वर से प्रेम करता है, उसकी सेवा में सदैव तत्पर रहूँगा।....

मुझे चुपचाप शान्ति से काम करना अच्छा लगता है और परमात्मा हमेशा मेरे साथ हैं। यदि तुम मेरे अनुगामी बनना चाहते हो तो सम्पूर्ण निष्कपट होओ, पूर्ण रूप से स्वार्थ त्याग करो,—और सबसे अधिक—पूर्ण रूप से पवित्र बनो। मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ है। इस अल्पायु में परस्पर प्रशंसा का समय नहीं है। संग्राम के बाद किसने क्या किया इसकी तुलना करेंगे, और आपस में एक दूसरे की यथेष्ट प्रशंसा करेंगे। अब बातें न करो; काम करो, काम करो, काम करो! मैंने तुम्हारा किया हुआ कोई स्थायी काम नहीं देखा—मैं तुम्हारा स्थापित किया हुआ कोई केन्द्र नहीं देखता हूँ, मैं तुम्हारा बनाया हुआ कोई मन्दिर या सभागृह नहीं देखता हूँ, मैं किसी को तुम्हें सहयोग देते नहीं देख रहा हूँ। बातें, बातें, बातें! इसकी कमी नहीं है! 'हम बड़े हैं', 'हम बड़े हैं'! यह तो बकवास है! हम शक्तिहीन हैं; यही हम हैं! यह नाम और यश की प्रबल आकांक्षा, और और सब पाखण्ड यह मेरे लिए क्या है? मुझे उनकी क्या

परवाह है? मैं सैकड़ों को परमात्मा के पास आते हुए देखना चाहता हूँ। वह कहाँ हैं? मुझे उनकी आवश्यकता है, मैं उन्हें देखना चाहता हूँ। तुम उन्हें ढूँढ निकालो। तुम मुझे केवल नाम और यश देते हो। नाम और यश को छोड़ो। काम में लगो। मेरे वीरो, काम में लगो! तुमने अभी तक मेरे भीतर जो आग जल रही है उसे नहीं जाना— उसके संस्पर्श से अभी तक तुम्हारा हृदय अग्निमय नहीं हो उठा। तुमने अभी तक मुझे नहीं पहचाना, तुम आलस्य और सुखभोग की लकीर पीट रहे हो। आलस्य का त्याग करो, लोक और परलोक के सुखभोग को दूर हटाओ। आग में कूद पड़ो और परमात्मा की ओर लोगों को ले आओ।

मेरे भीतर जो आग जल रही है वही तुम्हारे भीतर जल उठे। तुम अत्यन्त निष्कपट होओ। संसार के रणक्षेत्र में तुम्हारी वीरों की मृत्यु हो—यह निरन्तर प्रार्थना है—

विवेकानन्द की

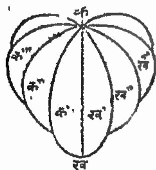
पु०—आलासिंगा, किड़ी, डाक्टर, बालाजी और अन्यान्य सबों को यह कहो कि राम श्याम हरि कोई भी व्यक्ति हमारे पक्ष में या हमारे विरुद्ध जो कुछ भी कहे उसको लेकर माथापच्ची न करें, वरन् अपनी समस्त शक्ति एकत्रित कर कार्य में लगायें।

वि०

कभी-कभी थोड़ा सा रुपया तुम्हारे काम के लिए भेज सकूँगा; परन्तु इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता। यदि तुम्हें इसकी प्रतीक्षा करनी है, तो काम बंद कर दो। यह समझते रहो कि मेरे विचारों के लिए यह एक विशाल क्षेत्र है और मुझे इसकी परवाह नहीं है कि यहाँ के लोग हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हैं। जो ईश्वर से प्रेम करता है, उसकी सेवा में सदैव तत्पर रहूँगा।....

मुझे चुपचाप शान्ति से काम करना अच्छा लगता है और परमात्मा हमेशा मेरे साथ हैं। यदि तुम मेरे अनुगामी बनना चाहते हो तो सम्पूर्ण निष्कपट होओ, पूर्ण रूप से स्वार्थ त्याग करो,—और सबसे अधिक—पूर्ण रूप से पवित्र बनो। मेरा आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ है। इस अल्पायु में परस्पर प्रशंसा का समय नहीं है। संग्राम के बाद किसने क्या किया इसकी तुलना करेंगे, और आपस में एक दूसरे की यथेष्ट प्रशंसा करेंगे। अब बातें न करो; काम करो, काम करो, काम करो! मैंने तुम्हारा किया हुआ कोई स्थायी काम नहीं देखा—मैं तुम्हारा स्थापित किया हुआ कोई केन्द्र नहीं देखता हूँ, मैं तुम्हारा बनाया हुआ कोई मन्दिर या सभागृह नहीं देखता हूँ, मैं किसी को तुम्हें सहयोग देते नहीं देख रहा हूँ। बातें, बातें, बातें! इसकी कमी नहीं है! 'हम बड़े हैं', 'हम बड़े हैं'! यह तो बकवास है! हम शक्तिहीन हैं; यही हम हैं! यह नाम और यश की प्रबल आकांक्षा, और और सब पाखण्ड यह मेरे लिए क्या है? मुझे उनकी क्या

अपरिणामी रह कर ज्ञान का पान करती है। जितनी जीवात्माएँ हो चुकी हैं या होंगी सभी वर्तमान काल में हैं—और जड़ जगत् की एक उपमा की सहायता लेकर हम कह सकते हैं कि वे सब रेखा-गणित के एक बिन्दु (Geometrical Point) पर स्थित हैं। आत्मा में देश का भाव नहीं रहता, इसलिए जो हमारे थे, वे हमारे हैं, और सर्वदा हमारे रहेंगे। वे सर्वदा हमारे संग हैं, सर्वदा हमारे संग थे, और सर्वदा हमारे संग रहेंगे। हम उनमें हैं, वे हममें। इन कोष्ठों को देखो। यद्यपि प्रत्येक पृथक् है, तथापि वे सब क, ख (देह और प्राण), इन दो बिन्दुओं में अभिन्न भाव से संयुक्त हैं। वहाँ



सब एक हैं। प्रत्येक का अलग अलग एक व्यक्तित्व है परन्तु वे सब क-ख बिन्दुओं में एक हैं। कोई भी उस कख अक्षरेखा से निकल कर भाग नहीं सकता, और परिधि चाहे कितना टूटा या फटा हो परन्तु अक्षरेखा में खड़े होने से हम किसी भी कोष्ठ में प्रवेश कर सकते हैं। यह अक्षरेखा ईश्वर है। वहाँ उनसे हम अभिन्न हैं, सब सब में हैं; और सब ईश्वर में हैं।

चन्द्रमा के मुख पर बादल चलते हैं, वे यह भ्रम उत्पन्न करते हैं कि चन्द्रमा चल रहा है। इसी प्रकार प्रकृति, शरीर और जड़ (matter) ये गतिशील हैं और उनकी गति ही यह भ्रम उत्पन्न करती है कि आत्मा गतिशील है। इस प्रकार अन्त में हमें यह पता

लगता है कि जिस सहजज्ञान—Instinct—(अथवा दैवप्रेरणा—inspiration?) द्वारा सब जातियों के उच्च नीच मनुष्य मृत व्यक्तियों की उपस्थिति अपने समीप ही अनुभव करते आरहे हैं, वह युक्ति की दृष्टि से भी सत्य है।

प्रत्येक जीवात्मा एक नक्षत्र है, और ये सब नक्षत्र ईश्वररूपी उस अनन्त निर्मल नील आकाश में विन्यस्त हैं। वही ईश्वर प्रत्येक जीवात्मा का मूलस्वरूप, वही प्रत्येक का यथार्थ स्वरूप है, वही प्रत्येक का प्रकृत व्यक्तित्व है। इन जीवात्मा-रूप नक्षत्रों में से कुछ के (जो हमारी दृष्टि के अतीत प्रदेश में चले गये हैं,) अनुसन्धान से ही धर्म का आरम्भ हुआ; और यह अनुसन्धान तभी समाप्त हुआ जब उन सब को हमने परमात्मा में पाया, एवं अपने आप को भी उन्हीं में पाया। अब सारा रहस्य यह है कि आपके पिता ने जो जीर्ण वस्त्र पहना था उसका त्याग उन्होंने कर दिया, और वे वहीं अवस्थित हैं जहाँ वे अनन्त काल से थे। इस लोक में या किसी और लोक में क्या फिर वह ऐसा ही और एक वस्त्र तैयार करके परिधान करेंगे? मैं सच्चे दिल से भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि ऐसा न हो, जब तक कि वह यह बात पूरे ज्ञान के साथ न करें। मैं प्रार्थना करता हूँ कि अपने पूर्वकर्म की अदृश्य शक्ति से परिचालित होकर कोई भी अपनी इच्छा के विरुद्ध कहीं भी न ले जाया जाय। मैं प्रार्थना करता हूँ कि सभी मुक्त हो जायँ अर्थात् वे

यह जानें कि वे मुक्त हैं। और यदि उन्हें फिर कोई स्वप्न देखना हो तो वह सब आनन्द और शान्ति के स्वप्न हों........

आपका,
विवेकानन्द

(श्रीमती ओल बुल को)

न्यूयार्क,
२४ जनवरी १८९५

प्रिय श्रीमती बुल,

....मुझे भय है कि इस वर्ष कार्य भार से मैं थका जा रहा हूँ। मुझे विश्राम की परम आवश्यकता है। इसलिए आपका यह कहना कि बोस्टन का काम मार्च के अन्त में आरम्भ किया जाय, बहुत अच्छा है। अप्रैल के अन्त में मैं इङ्गलैण्ड के लिए चल दूँगा। कैटस्किल में जमीन के बड़े-बड़े टुकड़े कम दाम में मिल सकते हैं। एक १०१ एकड़ का टुकड़ा २००. डालर का है। रुपया मेरे पास तैयार है, परन्तु जमीन मैं अपने नाम से नहीं ले सकता हूँ। इस देश में आप ही मेरी एक मित्र हैं जिनपर मुझे पूरा विश्वास है। यदि आप स्वीकार करें तो मैं आपके नाम से जमीन खरीद लूँ। गर्मी में विद्यार्थी वहाँ जाएँगे, अपनी इच्छा से छोटे-छोटे मकान या तम्बू डालेंगे और ध्यान का अभ्यास करेंगे। बाद में कुछ धन इकट्ठा कर सकने पर वे वहाँ पक्की इमारत आदि का निर्माण कर सकेंगे।

........इस महीने के रविवार वाले व्याख्यानों का कल अन्तिम दिवस है। आगामी मास के पहले रविवार को ब्रुकलिन में भाषण होगा। शेष तीन न्यूयार्क में, उसके बाद मैं इस वर्ष के न्यूयार्क के भाषणों को बंद कर दूँगा।

मैंने अपनी शक्ति भर प्रयत्न करके काम किया है। यदि उसमें सत्य का कोई बीज है तो वह यथा काल अंकुरित होगा। इसलिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है। व्याख्यान देने से और कक्षाएँ लेने से मैं अब थक भी गया हूँ। इङ्गलैंड में कुछ महीने काम करके मैं भारत जाऊँगा और वहाँ कुछ वर्षों के लिए या सदा के लिए अपने आप को पूरी तरह से छुपा लूँगा। मेरी अन्तरात्मा निश्चिन्त है कि मैं आलसी स्वामी न था। मेरे पास एक स्मरण-पुस्तक है जिसने सारे संसार में मेरे संग यात्रा की है। सात वर्ष पहले उसमें मैं यह लिखा हुआ पाता हूँ—"अब एक ऐसा एकान्त स्थान मिले जहाँ मृत्यु की प्रतीक्षा में मैं पड़ा रह सकूँ!" परन्तु यह सब कर्म-भोग शेष था। मैं आशा करता हूँ कि अब मेरा कर्म क्षय हो गया है। मैं आशा करता हूँ कि ईश्वर मुझे इस प्रचार-कार्य से और सुकर्म के बंधन को बढ़ाने से छुटकारा देगा।

"आत्मा ही एक एवं अखण्ड सत्तास्वरूप और शेष सब असत्"—यह ज्ञान होने पर कौन सा व्यक्ति या कौन सी वासना मानसिक उद्वेग का कारण हो सकती है? माया द्वारा कल्याण करने के विचार आदि मेरे मस्तिष्क में आए—अब वे मुझे छोड़ रहे हैं। मेरा यह विश्वास अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है कि कर्म का ध्येय

केवल चित्त की शुद्धि है, जिससे ज्ञान प्राप्त करने का वह अधिकारी हो। यह संसार गुण और दोष सहित अनेक रूपों में चलता रहेगा। पुण्य और पाप केवल नए नाम और नए स्थान बना लेंगे। मेरी आत्मा निरवच्छिन्न और अनश्वर शान्ति और विश्राम के लिए लालायित है।

"अकेले रहो, अकेले रहो। जो अकेला रहता है उसका किसी से विरोध नहीं होता—वह किसी की शान्ति भंग नहीं करता, न उसकी शान्ति कोई दूसरा भंग करता है।" हा! मैं तरसता हूँ—अपने चिथड़ों के लिए, अपने मुण्डित मस्तक के लिए, वृक्ष के नीचे सोने के लिए, और भिक्षा के भोजन के लिए मैं तरसता हूँ! भारत में अपने दोष होते हुए भी वही एकमात्र स्थान है जहाँ आत्मा अपनी मुक्ति, अपने ईश्वर को पाती है। यह पश्चिमी चमक-दमक केवल मिथ्या है और आत्मा का बंधन है। संसार की निस्सारता का मैंने अपने जीवन में कभी ऐसी दृढ़ता से अनुभव नहीं किया था। ईश्वर सब को बंधन से मुक्त करे—माया से सब लोग निकल सकें—यही नित्य प्रार्थना है —विवेकानन्द की।

(कुमारी मेरी हेल को)

५४ डब्ल्यू ३३-वीं स्ट्रीट,
न्यूयार्क, १ फरवरी १८९५

प्रिय बहिन,

आपका सुन्दर पत्र मुझे अभी मिला।..........कभी-कभी धर्म के लिए धर्म करने को आबद्ध होना, यहाँ तक कि अपने

परिश्रम के फल के भोग से भी वंचित रहना यह एक अच्छी साधना है।........आपके आक्षेप से मैं प्रसन्न हूँ और तनिक भी दुःखी नहीं। कुछ दिन हुए श्रीमती थर्सबी के यहाँ एक प्रेसबेटीरियन सज्जन के संग उत्तेजित विवाद हुआ। सामान्य रीति से उन सज्जन का पारा चढ़ गया और वे क्रोध से दुर्वचन कहने लगे। परन्तु बाद में श्रीमती बुल ने मुझे बहुत झिड़का, क्योंकि इस प्रकार की बातें मेरे काम में बाधा डालती हैं। ऐसा मालूम होता है कि आप का भी यही मत है।

मुझे प्रसन्नता है कि आपने इसी समय इस प्रसंग को उठाया, क्योंकि मैं इस पर बहुत विचार करता रहा हूँ। पहली बात यह कि मुझे इन बातों का तनिक भी दुःख नहीं। कदाचित् आपको इससे घृणा होगी—हो सकता है। मैं जानता हूँ कि किसी को भी सांसारिक उन्नति के लिए मधुरता कितना मूल्य रखती है।........मैं मधुर बनने का भरसक प्रयत्न करता हूँ परन्तु जब अन्तरस्थ सत्य से विकट समझौता करने का अवसर आता है तब मैं रुक जाता हूँ। मैं दीनता में विश्वास नहीं रखता। मैं समदर्शित्व में विश्वास रखता हूँ—अर्थात् सब के लिए सम भाव। अपने 'ईश्वर' स्वरूप समाज की आज्ञा पालन करना साधारण मनुष्यों का धर्म है, परन्तु जो 'ज्योति के बालक' होते हैं वे ऐसा कभी नहीं करते। यह एक अटल नियम है। एक व्यक्ति अपनी बाह्य परिस्थिति व अपने सामाजिक विचारों के अनुकूल अपने आपको बनाता है, और समाज, जो कि उसका सब प्रकार

से कल्याण करने वाला है, उससे सब प्रकार की अच्छी चीज़ें, सुख-सुविधाएँ प्राप्त कर लेता है। दूसरा अकेला खड़ा रहता है और समाज को अपनी ओर खींच लेता है। समाज के अनुकूल रहने वाले मनुष्य का मार्ग फूलों से आच्छादित रहता है, और प्रतिकूल का काँटों से। परन्तु लोकमत के उपासकों का तुरन्त ही विनाश होता है और सत्य की सन्तान सदा जीवित रहती है।

सत्य की तुलना मैं एक अनन्त शक्ति वाले क्षयंकर (Corrosive) पदार्थ से करूँगा। वह जहाँ भी गिरता है जलाकर अपना स्थान बना लेता है—यदि नरम वस्तु पर, तो तुरन्त ही; यदि कठोर पाषाण पर, तो धीरे-धीरे, परन्तु जलाता अवश्य है। जो लिखा है सो लिखा है। मुझे दुःख है बहिन, कि प्रत्येक कलुषित असत्य के प्रति मैं मधुर और अनुकूल नहीं हो सकता हूँ। इसके लिए मैंने आजीवन कष्ट उठाया है परन्तु मैं वैसा नहीं कर सकता। मैंने प्रयत्न पर प्रयत्न किया है, परन्तु मैं नहीं कर सका। अन्त में मैंने इसे त्याग दिया। ईश्वर महिमामय है। वह मुझे कपटी नहीं बनने देता। अब जो मन में है उसे प्रकट होने दीजिये। मैंने कोई ऐसा मार्ग नहीं पाया जिससे मैं सब को प्रसन्न रख सकूँ और मैं वही रहूँ, जो मैं प्रकृत रूप से हूँ, अपनी अन्तरात्मा के प्रति स्थिरलक्ष्य होकर। "सौंदर्य और यौवन का नाश होता है, जीवन और धन का नाश होता है, नाम और यश का नाश होता है, पर्वत भी चूर-चूर होकर मिट्टी हो जाते हैं, मित्रता और प्रेम भी नश्वर हैं। एक मात्र

सत्य ही चिरस्थायी है।" हे सत्य रूपी प्रभु, आप ही मेरे एकमात्र पथ-दर्शक बनिये! अब मेरी आयु बीती जा रही है, और अब मैं केवल मीठा, केवल मधुवत् नहीं बन सकता। जैसा मैं हूँ मुझे वैसा ही रहने दो। "हे संन्यासी, निर्भय होकर तुम दूकानदारी वृत्ति छोड़ दो, शत्रु-मित्र में भेद न रखकर सत्य में दृढ़-प्रतिष्ठ रहो और इसी क्षण से लोक, परलोक और भविष्य के सब लोकों का— उनके भोग और उनकी असारता का त्याग करो। हे सत्य, तुम ही मेरे एक पथ-दर्शक हो।" मुझे धन या नाम या यश या भोग की कोई इच्छा नहीं है। बहिन, मेरे लिए वे धूल के समान हैं। मैं अपने भाइयों की सहायता करना चाहता हूँ। परमात्मा की कृपा से मुझमें धनोपार्जन का चातुर्य नहीं है। मेरे चारों ओर जो लोग हैं उनकी सनक के अनुरूप व्यवहार करने का मुझे क्या कारण है, क्यों न मैं हृदयस्थ सत्य की वाणी का आज्ञापालन करूँ। बहिन, मन अभी दुर्बल है और कभी-कभी यंत्रवत् लौकिक सहायता को पकड़ना चाहता है। परन्तु मैं डरता नहीं। मेरा धर्म सिखाता है कि भय ही सब से बड़ा पाप है।

प्रेसबेटीरियन पादरी से पिछली झपट के बाद, और फिर श्रीमती बुल से लम्बे झगड़े के पश्चात् जो मनु ने संन्यासी से कहा वह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है अर्थात् "अकेले रहो और अकेले चलो।" सब मित्रताएँ और प्रेम बन्धन हैं। कोई ऐसी मित्रता न हुई, विशेषतः स्त्रियों की, जिसमें 'मुझे दो-मुझे दो' का भाव न हो। हे महर्षियो! आप

ठीक कहते थे। जो किसी व्यक्तिविशेष के आसरे रहता है वह उस सत्य रूपी परमात्मा की सेवा नहीं कर सकता। शान्त हो मेरी आत्मा, निःसंग होओ! और परमात्मा तुम्हारे संग रहेगा। जीवन मिथ्या है! मृत्यु भ्रम है! परमात्मा का ही अस्तित्व है, इन सबका नहीं! डरो नहीं मेरी आत्मा, निःसंग होओ। बहिन, मार्ग लम्बा है, समय थोड़ा है; सन्ध्या हो रही है। मुझे शीघ्र ही घर जाना है। मुझे शिष्टाचार सीखने का समय नहीं है। मुझे अपना सन्देसा देने का समय तो मिलता ही नहीं। आप गुणवती हैं, इतनी दयावती हैं, मैं आपके लिए कुछ भी करने को तैयार हूँ; परन्तु अप्रसन्न न होइये, मैं आप सबको निरे बालक ही समझता हूँ।

स्वप्नों को त्यागो। आह, हे मेरी आत्मा, स्वप्न को त्यागो। संक्षेप से, मुझे एक संदेसा देना है। मुझे संसार से मधुर व्यवहार करने का समय नहीं है; और मधुर बनने के प्रत्येक यत्न से मैं कपटी बनता हूँ। चाहे स्वदेश हो या विदेश, परन्तु इस मूर्ख संसार की प्रत्येक आवश्यकता पूरी करने की अपेक्षा तथा निम्नतम स्तर का असार जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा मैं सहस्र बार मरना अच्छा समझता हूँ। यदि आप श्रीमती बुल की तरह समझती हैं कि मुझे कुछ कार्य करना है तब यह आप की भूल है—नितान्त भूल है। इस जगत में या अन्य किसी जगत में मेरे लिए कोई कार्य नहीं है। मेरे पास एक संदेसा है वह मैं अपने ढंग से ही दूँगा। मैं अपने संदेसे को न हिन्दू धर्म, न ईसाई धर्म, न संसार के किसी और

(श्रीमती ओलं बुल को)

५४ डब्ल्यू ३३ वीं स्ट्रीट, न्यूयार्क,
२१ मार्च १८९५

प्रिय श्रीमती बुल,

........रमाबाई की मित्र मण्डली मेरी जो निन्दा कर रही है उसे सुनकर मैं अत्यन्त चकित हुआ....आप यह नहीं देखतीं श्रीमती बुल, कि मनुष्य चाहे कैसा ही आचरण करे कुछ लोग ऐसे अवश्य होंगे जो उसके लिए अत्यन्त कलुषित झूठ की रचना करेंगे। शिकागो में प्रतिदिन मेरे लिए इस तरह की बातें कही जाती थीं।

और ये स्त्रियाँ निश्चित रूप से ईसाइयों में आदर्श ईसाई होती हैं........मैं अपने कमरे में (नीचे) जहाँ सौ आदमी बैठ सकते हैं क्रम से व्याख्यान करवाने वाला हूँ, उससे खर्च निकल आएगा.... श्रीमती हैमलिन ने बड़ी कृपा मेरे ऊपर की है और भरसक मेरी सहायता करती हैं।

मेरे गुरुदेव कहते थे कि ये नाम जैसे कि हिन्दू, ईसाई इत्यादि मनुष्य-मनुष्य में भ्रातृ-प्रेम के होने में बहुत रुकावट डालते हैं। पहले हमें इन्हें तोड़ने का यत्न करना चाहिये। उनकी कल्याण करने वाली शक्ति तो अब नष्ट हो गई है, और अब केवल वह पापमय प्रभाव रह गया है जिसके मलिन जादू से हममें से सर्वश्रेष्ठ मनुष्य भी राक्षसों का सा व्यवहार करने लगते हैं। अच्छा, हमें बहुत परिश्रम करना पड़ेगा और सफलता प्राप्त करनी ही पड़ेगी।

इसीलिए मुझे यह प्रबल इच्छा है कि हमारा एक केन्द्र हो। संगठन में निस्सन्देह अवगुण होते हैं पर उसके बिना कुछ काम नहीं हो सकता। मुझे डर है कि यहाँ पर मैं आपसे सहमत नहीं हूँ—किसी ने आज तक समाज को सन्तुष्ट रखकर उसके साथ ही किसी बड़े काम में सफलता प्राप्त नहीं की। अन्तःप्रेरणा से मनुष्य को काम करना चाहिये और यदि वह काम शुभ और कल्याणप्रद है तो अपनी मृत्यु के पश्चात्, शताब्दियों के बाद, समाज की भावना में परिवर्तन अवश्य ही उत्पन्न होगा। मन, प्राण और शरीर से हमें काम में लग जाना चाहिये। और जब तक हम एक और एक ही विचार पर अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार रहेंगे तब तक कदापि हम ज्योति का दर्शन नहीं कर सकते।

जो मनुष्य-जाति की सहायता करना चाहते हैं उन्हें उचित है कि वे अपना सुख और दुख, नाम और यश, और सब प्रकार के स्वार्थ की एक प्रकार की पोटली बनाकर समुद्र में फेंक दें और तब वे ईश्वर के समीप आएँ। सब गुरुजनों ने यही कहा और किया है।

मैं पिछले शनिवार को श्रीमती कोरबिन के पास गया और कहा कि मैं अब कक्षाएँ न ले सकूँगा। क्या कभी संसार के इतिहास में धनवानों ने कुछ काम किया है? काम हमेशा हृदय और बुद्धि से होता है, न कि धन से। मैंने अपने एक विशिष्ट मत्र के लिए समग्र जीवन उत्सर्ग किया है। भगवान मेरी सहायता करेंगे—मैं और किसी की

सहायता नहीं चाहता। यह सफलता प्राप्त करने का रहस्य है। मुझे विश्वास है कि इसमें आप और हम एक हैं........

कृतज्ञ प्रेम से सदैव आपका—विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

यू. एस. ए.
४ अप्रैल १८९५

प्रिय आलासिंगा,

तुम्हारा पत्र अभी मिला। कोई व्यक्ति मेरा अनिष्ट करने की चेष्टा कर सकता है तुम इससे मत डरो। जब तक प्रभु मेरी रक्षा करते हैं मैं अभेद्य रहूँगा। अमेरिका के सम्बन्ध में तुम्हारी धारणा बहुत अस्पष्ट है.......यह एक विशाल देश है और यहाँ के अधिकांश मनुष्य धर्म में विशेष रुचि नहीं रखते।....ईसाई धर्म देशभक्ति के रूप में स्थित है और कुछ नहीं....अब मेरे पुत्र, साहस न छोड़ो ! ....मुझे वेदान्त-सूत्र और सब सम्प्रदाय के भाष्य भेजो।......

मैं ईश्वर के हाथ में हूँ। भारत लौटने से क्या लाभ होगा भारत मेरे विचारों को आगे नहीं बढ़ा सकता। यह देश मेरे विचारों को अपनाता है। मुझे जब आज्ञा मिलेगी तब मैं वापस जाऊँगा। तब तक तुम धैर्यपूर्वक और धीरे-धीरे काम करो। यदि मेरे ऊपर

कोई आक्रमण करे तो उसके अस्तित्व को भूल जाओ।.........मेरा विचार एक ऐसा शिक्षालय स्थापित करने का है जहाँ वेद और वेदान्त के भाष्य सहित लोगों के शिक्षा मिले। अभी इस भाव से काम करो।....जितने बार तुम्हें दुर्बलता का अनुभव होता है यह समझो कि तुम अपने आप को और अपने कार्य दोनों को हानि पहुँचा रहे हो। अनन्त शक्ति और श्रद्धा ही सफलता का कारण है।

खुश रहो.........अपने आदर्श पर स्थिर रहो....प्राधान्यतः यह विचार रखो कि कभी दूसरों को मार्ग दिखाने का या उन पर हुकुम चलाने का यत्न न करो; जैसा कि अमेरिकन लोग कहते हैं "बौस" (Boss) (शासन) मत करो। सब के दास रहो।

सदैव आशीर्वाद पूर्वक—विवेकानन्द

(स्वामी रामकृष्णानन्दजी को)

यू. एस. ए.
११ अप्रैल १८९५

प्रिय शशी,

.........तुम लिखते हो कि अपने रोग से तुम अब स्वस्थ हो गए हो, परन्तु अब सावधान होकर रहना। देर में खाना, या अपथ्य भोजन, या गन्दे स्थान में रहने से रोग पूर्वावस्था में पलट कर आ-

सकता है और फिर मलेरिया से पीछा छुड़ाना कठिन हो जाएगा। पहले तुम्हें किसी उद्यान में एक छोटा सा मकान किराए पर लेना चाहिये। ३०) या ४०) में शायद तुम्हें मिल जाए। फिर पीने और पकाने के पानी को छनवाओ। बाँस का एक बड़ा फिल्टर तुम्हें पर्याप्त होगा। पानी अनेक रोगों का कारण होता है। जल की शुद्धता या अशुद्धता नहीं बल्कि उसमें कीटाणु भरे होने से रोग होता है। पानी को उबालकर छनवाओ। अपने स्वास्थ्य पर पहले ध्यान देना आवश्यक है। एक भोजन बनाने वाला, एक नौकर, साफ बिछौना, और समय से खाना पीना यह परमावश्यक है। कृपा करके इन प्रस्तावों पर चलने की पूर्ण व्यवस्था करो।....तुम लोगों का परस्पर प्रेम भाव ही तुम्हारे उद्योगों की सफलता का कारण होगा। जब तक द्वेष, ईर्ष्या और अहंकार रहेगा तब तक कुछ कल्याण नहीं हो सकता........काली की छोटी पुस्तक बहुत अच्छी लिखी हुई है, और उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। पीठपीछे किसी की निन्दा करना पाप है। इससे पूरी तरह बचकर रहना चाहिये। मन में कई बातें आती हैं परन्तु उन्हें प्रकट करने से राई का पहाड़ बन जाता है। यदि क्षमा कर दो और भूल जाओ तब उन बातों का अन्त हो जाता है। श्रीरामकृष्ण का उत्सव धूमधाम से मनाया गया यह प्रिय समाचार मुझे मिला। आगामी वर्ष में एक लाख मनुष्यों को जमा करने का प्रयत्न करना। एक पत्रिका निकालने के लिए अपनी शक्ति को काम में लाओ। लज्जा से काम नहीं चलेगा........जिसे

अनन्त धैर्य और अनन्त उद्योग है वही केवल सफलता प्राप्त कर सकता है। अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दो। बहुत से मूर्खों को इकट्ठा न करो। यदि तुम कुछ पुरुषार्थी मनुष्यों को एकत्रित करोगे तो मुझे हर्ष होगा। मैं एक के भी मुँह से बात निकलते हुए नहीं सुनता हूँ। तुमने उत्सव के दिन मिठाई बाँटी और कुछ भजन-मण्डलियों ने गाया जो अधिकांश आलसी थे। यह अच्छा हुआ, परन्तु तुमने क्या आध्यात्मिक भोजन (Spiritual food) दिया, यह मैंने नहीं सुना। जब तक तुम्हारा वह पुराना भाव—यह भाव कि कोई कुछ नहीं जानता *(Nil admirari)*—नहीं जायगा तब तक तुम कुछ कर न सकोगे, तुम्हें साहस भी न होगा। झगड़ालू हमेशा कायर होते हैं।

हर एक से सहानुभूति रखो, चाहे वह श्रीरामकृष्ण में विश्वास रखता हो या नहीं। यदि तुम्हारे पास कोई व्यर्थ वाद-विवाद के लिए आए तो नम्रतापूर्वक पीछे हट जाओ........तुम्हें सब सम्प्रदाय के लोगों से अपनी सहानुभूति प्रकट करनी चाहिये। जब इन मुख्य गुणों का तुममें विकास होगा तब तुम महान् शक्ति से काम कर सकोगे। नहीं तो केवल गुरु का नाम लेने से काम नहीं चलेगा। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस वर्ष के उत्सव ने बहुत सफलता प्राप्त की, और इसके लिए तुम्हें विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहिये। परन्तु तुम्हें आगे बढ़ना है, यह बात तुम समझे? शरद क्या कर रहा है? यदि तुम अज्ञान की शरण लोगे

तो कभी तुम्हें कुछ भी न आएगा।.........हमें ऊँचे भाव से कुछ करना चाहिये जो विद्वानों की बुद्धि को प्रिय लगे। संगीत मण्डली को केवल बुलाने से काम नहीं चलेगा। वह उत्सव उनका स्मारक ही न होगा, परन्तु उनके सिद्धान्तों के तीव्र प्रचार का मुख्य केन्द्र ......समय आने पर सब कुछ प्राप्त होगा। परन्तु बँधे हुए शिकारी कुत्ते की तरह मैं कभी कभी अधीर हो जाता हूँ। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, यही मेरा पुराना आदर्श-वाक्य है। मैं अच्छा हूँ। जल्दी में भारत लौटने का कोई काम नहीं। अपनी समस्त शक्तियों का संचय करो और मन और प्राण से काम में लगो। यही सच्ची वीरता होगी।

प्रेम पूर्वक तुम्हारा—विवेकानन्द

(मि० ई. टी. स्टर्डी को)

५४ डब्ल्यू, ३३ वीं स्ट्रीट, न्यूयार्क,

२४ अप्रैल १८९५.

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि थोड़े दिन से जो 'रहस्यवाद' पश्चिमी संसार में अकस्मात् आविर्भूत हुआ है उसके मूल में यद्यपि कुछ सत्य है, परन्तु अधिकांश में वह हीन और उन्मादी प्रवृत्ति से प्रेरित है। इस कारण मैंने धर्म के इस अंग से कुछ सम्बन्ध नहीं रखा है—न भारत में, न कहीं और ही। और इन रहस्यवादियों का मैं पक्षपाती भी नहीं हूँ.........

मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूँ कि, चाहे पूर्व में या पश्चिम में, केवल अद्वैत दर्शन ही मानवजाति को 'पिशाच-पूजा' एवं इसी प्रकार के जातीय कुसंस्कारों से मुक्त कर सकता है और वही मनुष्य को अपनी प्रकृति में प्रतिष्ठित कर उसे शक्तिमान बना सकता है। भारत में स्वयं इसकी इतनी आवश्यकता है जितनी कि पश्चिम में, या कदाचित् वहाँ से भी अधिक। परन्तु यह काम कठिन और दुःसाध्य है। पहले इसकी रुचि उत्पन्न करनी पड़ेगी, फिर शिक्षा देनी पड़ेगी; और अन्त में समग्र प्रासाद का निर्माण करने में अग्रसर होना पड़ेगा।

पूर्ण निष्कपटता, पवित्रता, विशाल बुद्धि और सर्व विजयी इच्छा-शक्ति। इन गुणों से सम्पन्न थोड़े से मनुष्यों को यह काम करने दो और सारे संसार में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायगा। पिछले वर्ष इस देश में मैंने बहुत सा कार्य व्याख्यान रूप में किया, प्रचुर मात्रा में प्रशंसा प्राप्त की, परन्तु यह अनुभव हुआ कि वह कार्य मैं अपने लिए ही कर रहा था। वह धीरज से चरित्र का गढ़ना, सत्य का अनुभव करने का वह उत्कट उद्योग—मनुष्य-जाति के भावी जीवन पर इसी का प्रभाव पड़ेगा। इसलिए इस वर्ष मैं इसी दिशा में कार्य करने की आशा रखता हूँ। स्त्री-पुरुषों की एक छोटी सी मण्डली को व्यवहारिक अद्वैत की उपलब्धि की शिक्षा देने की मैं चेष्टा करूँगा। मुझे मालूम नहीं कि कहाँ तक मुझे इस कार्य में सफलता प्राप्त होगी। यदि कोई अपने देश और सम्प्रदाय की अपेक्षा मनुष्य-जाति का भला करना चाहे तो पश्चिम ही कार्य का उपयुक्त क्षेत्र है। मैं

आपके पत्रिका के विचार से पूरी तरह सहमत हूँ। परन्तु यह सब करने के लिए व्यवसाय-बुद्धि का मुझमें पूरा अभाव है। मैं शिक्षा और उपदेश दे सकता हूँ और कभी-कभी लिख सकता हूँ परन्तु सत्य पर मुझे अत्यन्त श्रद्धा है। ईश्वर मुझे सहायता और मेरे संग काम करने के लिए मनुष्य देगा, केवल मैं पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः निष्कपट और पूर्णतः निःस्वार्थी रहूँ।

"सत्यमेव जयते नानृतं। सत्येन पन्था विततो देवयानः।"—अर्थात् "सत्य की ही केवल विजय होती है, असत्य की नहीं। ईश्वर की ओर जाने का मार्ग सत्य में से ही है।"—यजुर्वेद। जो निजी क्षुद्र स्वार्थ को संसार के कल्याणार्थ त्यागता है वह सम्पूर्ण सृष्टि को अपनाता है.................मैं इङ्गलेण्ड आने के विषय में अनिश्चित हूँ। मैं वहाँ किसी को नहीं जानता, और यहाँ कुछ कार्य कर रहा हूँ। प्रभु अपने समय पर मेरा पथ-प्रदर्शन करेंगे।

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

६ मई १८९५

प्रिय आलासिंगा,

आज सबेरे मुझे तुम्हारा पिछला पत्र और रामानुजाचार्य-भाष्य का पहला खंड मिला..........यदि हिन्दू सब निद्रित अवस्था में रहेंगे, तो मैं हिन्दू-धर्म का समर्थन करने में अपनी शक्ति क्यों क्षीण करूँ?

तुम तीस करोड़ आदमी वहाँ क्या कर रहे हो? विशेषतः वे, जिन्हें अपनी विद्वत्ता आदि का अभिमान है! तुम क्यों नहीं इस संग्राम का भार अपने कंधों पर लेते और मुझे केवल शिक्षा और प्रचार करने का अवकाश देते! मैं यहाँ अपरिचित लोगों में दिन रात झगड़ रहा हूँ..........भारत से मुझे क्या सहायता मिलती है? कभी संसार में कोई ऐसा देशभक्ति-हीन राष्ट्र देखा है, जैसा कि भारत है? अगर तुम योरोप और अमेरिका में उपदेश देने के लिए बारह सुशिक्षित दृढ़चेता मनुष्यों को यहाँ भेज सको, और कुछ साल तक उन्हें यहाँ रख सको तो इस भाँति राजनीतिक और नैतिक दृष्टि से, दोनों तरह की भारत की अपरिमित सेवा हो जाय। जो मनुष्य नैतिक दृष्टि से भारत के प्रति सहानुभूतिसम्पन्न होता है वह राजनीतिक विषयों में भी उसका मित्र हो जाता है। बहुत से पश्चिमी राष्ट्र तुम्हें अर्ध-नग्न बर्बर समझते हैं। इसलिए वे तुम्हें कोड़े के जोर से सभ्य बनाना उचित समझते हैं। क्यों नहीं तुम इनको इसके विपरीत दिखाते हो?....दूर देश में एक आदमी अकेला क्या कर सकता है? जो मैंने किया भी है, उसके योग्य भी तुम नहीं हो..........

अब तक जितने हिन्दू पश्चिमी देशों में गए हैं, उन्होंने प्रशंसा या धन के लोभ में अधिकतर अपने धर्म और देश का छिद्रान्वेषण किया है। तुम जानते हो कि नाम और यश ढूँढ़ने मैं नहीं आया था। यह मुझे अनिच्छित मिला है। मैं क्यों भारत में लौट कर जाऊँ? मेरी वहाँ कौन सहायता करेगा? मद्रास में वे मनुष्य कहाँ हैं,

जो धर्म का प्रचार करने के लिए संसार त्याग देंगे? मैं एक आदमी हूँ जिसने अपने देश के पक्ष में बोलने का साहस किया है, और मैंने उन्हें ऐसे विचार प्रदान किए हैं, जिसकी आशा हिन्दुओं से वे स्वप्न में भी न रखते थे। हजारों इस देश में मेरे मित्र हैं और सैकड़ों मेरा मृत्यु-पर्यन्त अनुसरण करेंगे। प्रति वर्ष वे बढ़ते जाएँगे और यदि मैं उनके संग रह कर काम करता रहा, तो जीवन और धर्म का मेरा आदर्श पूरा होगा। यह तुम समझने दो!

अमेरिका में जो सार्वजनीन मन्दिर (Temple Universal) बनने वाला था, उसके विषय में मैं अब बहुत नहीं सुनता; परन्तु फिर भी न्यूयार्क, जो अमेरिकन जीवन का केन्द्र है, उसमें मैंने सुदृढ़ जड़ पकड़ ली है, और इसलिए मेरा काम चलता रहेगा। मैं अपने कुछ शिष्यों को, ग्रीष्म-काल के निमित्त बने हुए एक एकान्त स्थान में ले जा रहा हूँ। वहाँ योग, भक्ति और ज्ञान में उनकी शिक्षा समाप्त होगी और फिर वे काम करने में सहायता कर सकेंगे। मेरे लड़को, अब काम करो। एक मास में मैं पत्रिका के लिए कुछ धन भेज सकूँगा। हिन्दू भिखारियों से भिक्षा मत माँगो। मैं सब अपने मस्तिष्क और बाहुबल से स्वयं करूँगा। मैं किसी मनुष्य से सहायता नहीं चाहता, चाहे वह यहाँ हो, या भारत में.........श्रीरामकृष्ण को अवतार मानने के लिए लोगों पर जोर न दो।

अब मैं तुम्हें अपने एक नूतन आविष्कार के बारे में बतलाऊँगा। समग्र धर्म वेदान्त में ही है अर्थात् वेदान्त-दर्शन के द्वैत, विशिष्टाद्वैत

और अद्वैत, इन तीन स्तरों या भूमिकाओं में है और ये एक के बाद एक आते हैं। और मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति की क्रम से ये तीन भूमिकायें हैं। प्रत्येक भूमिका आवश्यक है। यही सार-रूप से धर्म है। भारत के नाना प्रकार के जातीय आचार-व्यवहारों और धर्म-मतों में वेदान्त के प्रयोग का नाम है 'हिन्दू धर्म'। योरोप की जातियों के विचारों में उसकी पहली भूमिका अर्थात् द्वैत का प्रयोग है 'ईसाई धर्म'। सेमेटिक (Semetic) जातियों में उसका ही प्रयोग है 'इस्लाम धर्म'। अद्वैतवाद ही अपनी योगानुभूति के आकार में हुआ 'बौद्ध धर्म'—इत्यादि, इत्यादि। धर्म का अर्थ है वेदान्त; उसका प्रयोग विभिन्न जातियों के विभिन्न प्रयोजन, पारिपार्श्विक अवस्था एवं अन्यान्य अवस्थाओं के अनुसार विभिन्न रूपों में बदलता ही रहेगा। मूल दार्शनिक तत्त्व एक होने पर भी तुम देखोगे कि शैव, शाक्त आदि हर एक ने अपने-अपने विशेष धर्मगत और अनुष्ठानपद्धति में उसे रूपान्तरित कर लिया है। अब अपनी पत्रिका में तुम इन तीन प्रणालियों पर लेख पर लेख लिखो, जिनमें उनका सामंजस्य दिखाओ कि वे अवस्थाएँ कैसे एक के बाद एक क्रमानुसार आती हैं। उसके साथ साथ धर्म के अनुष्ठानिक अंग को बिल्कुल दूर रखो; अर्थात् दार्शनिक एवं आध्यात्मिक भाव का प्रचार करो और लोगों को अपने अपने अनुष्ठानों एवं क्रियाकलापादि में उसका प्रयोग करने दो। मैं इस विषय पर पुस्तक लिखना चाहता हूँ; इसलिये मैं तीनों भाष्य चाहता था। परन्तु अभी तक रामानुज-भाष्य का एक ही भाग मुझे मिला है।

....तुम जानते हो कि मैं कुछ विशेष लेखक नहीं हूँ। मुझे द्वार-द्वार भीख माँगने का अभ्यास नहीं है। मैं चुपचाप बैठता हूँ और अपने आप जिस चीज़ को आना हो, आने देता हूँ.........मेरे बच्चो, यदि मैं संसारी, पाखण्डी होता, तो यहाँ पर एक बड़ा संघ स्थापन करने में बड़ी भारी सफलता प्राप्त करता। हाय! यहाँ इतने ही में धर्म है; धन और उसके साथ नाम-यश की लालसा —यही है पुरोहितों का दल; और धन के साथ काम का योग देने से होता है साधारण गृहस्थों का दल। मैं मनुष्य-जाति में एक वर्ग उत्पन्न करूँगा, जो ईश्वर में अन्तःकरण से विश्वास करेगा और संसार की परवाह नहीं करेगा। यह कार्य अति मन्द गति से होगा। उस समय तक तुम अपना काम करो और मैं अपनी नौका को सीधा चला कर ले जाऊँगा। पत्रिका को वकवादी न होना चाहिये; परन्तु शान्त, स्थिर और उच्च आदर्श युक्त........उत्तम और नियमित रूप से लिखने वाले लेखकों का दल ढूँढ़ लो......पूर्णतः निःस्वार्थ हो स्थिर रहो, और काम करो। हम बड़े बड़े काम करेंगे, डरो मत। एक बात और है। सब के सेवक बनो। और दूसरों पर शासन करने का तनिक भी यत्न न करो, क्योंकि इससे ईर्ष्या उत्पन्न होती है और सब काम नष्ट हो जाता है.... ...आगे बढ़ो। तुमने बहुत अच्छा काम किया है। हम अपने भीतर से ही सहायता लेंगे—अन्य सहायता हम नहीं चाहते। आत्मविश्वास रखो, सच्चे और सहनशील रहो। मेरे और अन्यान्य मित्रों के विरुद्ध मत जाओ। सब से मिलकर मेल से रहो। सबको मेरा असीम प्यार। आशीर्वाद पूर्वक सदैव तुम्हारा,

विवेकानन्द

पु०—यदि तुम स्वयं ही नेता के रूप में सामने खड़े हो जाओगे तो तुम्हें सहायता देने के लिए कोई भी आगे न बढ़ेगा.... यदि सफल होना चाहते हो तो पहले 'अहं' का नाश कर डालो।

(खेतड़ी के महाराजा को)

यू. एस. ए.
९ जुलाई १८९५

........मेरे भारत लौटने के विषय में मामला यह है। जैसा कि आप अच्छी तरह जानते हैं मैं अपनी धुन का पक्का हूँ। मैंने इस देश में एक बीज बोया है, वह आज तक पौधा बन गया है और मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही वह वृक्ष हो जायगा। मेरे दो चार सौ अनुयायी हैं। मैं यहाँ कई संन्यासी बनाऊँगा, तब उन्हें काम सौंप कर भारत जाऊँगा। जितना ही ईसाई पादरी मेरा विरोध करते हैं, उतना ही मैंने ठान लिया है कि मैं उनके देश में स्थायी चिन्ह छोड़ कर जाऊँगा।........इस समय तक लन्दन में मेरे कुछ मित्र बन चुके हैं। मैं वहाँ अगस्त के आखिर तक जाऊँगा........ यह शीतकाल तो हर हालत में कुछ समय लन्दन में और कुछ समय न्यूयार्क में बिताना पड़ेगा। फिर मैं भारत आने के लिए स्वतंत्र हो जाऊँगा। भगवान की कृपा हुई, तो इस सर्दी के बाद यहाँ काम चलाने को काफी आदमी होंगे। हर काम को तीन अवस्थाओं में

से गुज़रना होता है—उपहास, विरोध और फिर स्वीकृति। जो मनुष्य अपने समय से आगे विचार करता है, लोग उसे निश्चय ही गलत समझते हैं। इसलिए विरोध और अत्याचार हम सहर्ष स्वीकार करते हैं; परन्तु मुझे दृढ़ और पवित्र होना चाहिए और भगवान में अपरिमित विश्वास रखना चाहिए। तब ये सब लुप्त हो जायँगे।

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

यू. एस. ए.

अगस्त १८९५

यह पत्र तुम्हारे पास पहुँचने के पहले ही मैं पेरिस में पहुँचूँगा। ....मैंने इस साल बहुत काम किया है, और अगले साल भी बहुत कुछ काम करने की आशा रखता हूँ। मिशनरियों के बारे में माथा-पच्ची न करो। उनका चिल्लाना स्वाभाविक ही है। जब किसी की रोटी छीन ली जाती है, तो कौन नहीं चिल्लाता? इन दो सालों में मिशनरियों की पूँजी में बहुत बड़ा अभाव हो गया है, और वह बढ़ता चला जा रहा है। खैर, मिशनरियों को मेरी शुभकामना है। जब तक भगवान और गुरु में तुम्हारी भक्ति है, और सत्य में विश्वास है, तब तक मेरे पुत्र, तुम्हें कोई चीज़ हानि नहीं पहुँचा सकती। परन्तु इनमें से किसी का भी अभाव विपदजनक है। तुमने ठीक कहा है; भारत की अपेक्षा मेरे विचार पश्चिम में ज्यादा काम

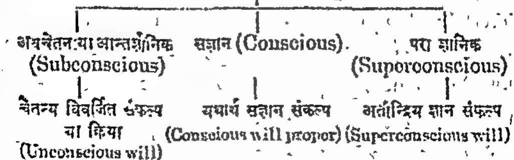
करेंगे.........भारत ने जो मेरे लिए किया है, उससे बहुत ज्यादा मैंने भारत के लिए किया। मैं सत्य पर विश्वास रखता हूँ। जहाँ मैं जाता हूँ, वहाँ भगवान मेरे लिए काम करने वालों के दल के दल भेज देते हैं; वे....शिष्यों के से नहीं हैं परन्तु गुरु के लिए जान देने को तैय्यार हैं। सत्य मेरा ईश्वर है और विश्व मेरा देश। मैं कर्तव्य को नहीं मानता। कर्तव्य संसारी लोगों के लिए अभिशाप है, संन्यासी के लिए नहीं। कर्तव्य पाखण्ड है। मैं स्वतंत्र हूँ, मेरे बन्धन कट गए, मुझे क्या चिन्ता है कि मेरा शरीर कहाँ जाता है और कहाँ नहीं जाता? तुम मुझे बराबर सहायता देते आये हो। परमात्मा तुम्हें इसका पुरस्कार देगा। मैंने न अमेरिका से प्रशंसा की आकांक्षा की, न भारत से। मैं ऐसी खोखली चीजों की अभिलाषा नहीं रखता हूँ। मुझे एक सत्य की शिक्षा देनी है, मैं जो भगवान का बालक हूँ। और जिसने मुझे सत्य का दान दिया, वह पृथ्वी के सर्वोत्तम और सब से बढ़कर शूर वीरों को मेरे संग काम करने को भेजेगा। तुम हिन्दू कुछ वर्ष में देखोगे कि भगवान पश्चिम में क्या करेंगे। तुम लोग पुरानी यहूजाति के से हो—न स्वयं खाते हो, न दूसरे को खाने देते हो। तुम्हारा कोई धर्म नहीं है—रसोई तुम्हारा ईश्वर है, और पकाने के पात्र तुम्हारी बाइबल। तुम लोग कुछ थोड़े से वीर लड़के हो....धैर्य के साथ काम करते रहो। लड़को, मेरी सन्तान में कोई कायर न निकले......बड़े काम क्या कभी बिना बाधा के पूरे हुए हैं? समय, धैर्य और अदम्य इच्छा-शक्ति अपना

कि यह दोनों बातें केवल दिखावे की होती हैं। न क्रमसंकोच है, न क्रमविकास। दोनों क्रियाएँ माया रूप हैं, केवल दिखावा—परिदृश्यमान अवस्थामात्र।

पहली बात यह कि आत्मा स्वभावतः ज्ञाता नहीं है। 'सच्चिदानन्द' संज्ञा आत्मा की एक प्रायः शुद्ध व्याख्या है और 'नेति' 'नेति' संज्ञा साररूप यथार्थ व्याख्या है। शौपेनहार ने अपना 'इच्छावाद' बौद्धों से ग्रहण किया। वासना, तृष्णा (पाली भाषा में 'तनहा') आदि शब्दों में भी यही भाव प्रकाशित हुआ है। हम भी यह स्वीकार करते हैं कि वासना ही सब प्रकार की अभिव्यक्ति का मूल कारण है, और यह सब अभिव्यक्ति उसका परिणाम-विशेष है। परन्तु जो कुछ भी 'हेतु' या 'कारण' है वह उस ब्रह्म और माया, दोनों के सम्मिश्रण से उद्भूत होता है। इतना ही नहीं वरन् 'ज्ञान' भी एक मिश्रित पदार्थ होने के कारण अद्वैत वस्तु अर्थात् ब्रह्म नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञात या अज्ञात सब प्रकार की वासना की अपेक्षा वह निःसन्देह श्रेष्ठ है एवं अद्वितीय ब्रह्म की निकटतम वस्तु है। वह अद्वैत तत्व प्रथम ज्ञान तथा उसके पश्चात् इच्छा की समष्टि रूप में अभिव्यक्त होता है। यदि यह कहा जाय कि उद्भिद 'अचेतन' अथवा अधिक से अधिक 'चैतन्य विवर्जित क्रियाशक्ति' मात्र है तो उसका यह उत्तर होगा कि यह अचेतन उद्भिदशक्ति और वह विराट विश्वव्यापी बुद्धिशक्ति—जिसे सांख्यकार 'महत' कहते हैं—एक चेतन इच्छा की ही अभिव्यक्ति हैं। "सभी वस्तुएँ उस 'एषणा' या 'संकल्प' रूप आदि वस्तु से उद्भूत हैं"—बौद्धों का यह मतवाद अपूर्ण है;

क्योंकि प्रथमतः 'इच्छा' स्वयं एक मिश्रित पदार्थ है, दूसरे, ज्ञान या चेतनारूप जो प्राथमिक मिश्रित पदार्थ है वह इच्छा के पहले ही विद्यमान है। ज्ञान ही क्रिया में परिणत होता है। प्रथम क्रिया, फिर प्रतिक्रिया। मन पहले अनुभव करता है एवं उसके बाद प्रतिक्रिया के रूप में उसमें संकल्प का उदय होता है। संकल्प मन में रहता है, इसलिये संकल्प को मूलवस्तु कहना भूल है। डायसन डार्विन-मतावलम्बियों के हाथ की कठपुतली मात्र हैं।

परन्तु क्रम-विकासवाद का उच्च पदार्थविज्ञान के साथ सामञ्जस्य स्थापित करना चाहिये। 'व्यक्त' और 'अव्यक्त' भाव आपस में परस्पर का नित्य अनुवर्तन करते हैं—यह तत्व पदार्थविज्ञान ही प्रमाणित कर सकता है। इसलिये 'वासना' या 'संकल्प' की अभिव्यक्ति के पहले 'महत' या 'विश्वचेतना' गुप्त अथवा सूक्ष्मभाव से विद्यमान रहती है। बिना ज्ञान के संकल्प असम्भव है; कारण इच्छित वस्तु के सम्बन्ध में यदि किसी भी प्रकार का ज्ञान न हो तो उसकी इच्छा का उदय होगा ही कैसे?



जिस क्षण ज्ञान की 'चेतन' और 'अवचेतन' दो अवस्थाओं की कल्पना की जायगी उसी क्षण आपाततः कठिन मालूम पड़ने वाला यह तत्व सरल हो जायगा। और होगा क्यों नहीं? यदि 'संकल्प' का हम इस प्रकार विश्लेषण कर सकते हैं तो उसकी मूल वस्तु का क्यों नहीं?

(मि० ई. टी. स्टर्डी को)

न्यूयार्क,
१९ पश्चिम ३८ वीं स्ट्रीट,
९ अगस्त १८९५

....यह केवल न्याय-संगत होगा यदि मैं अपने विचार कुछ आपके सामने प्रकट करूँ। मैं पूर्ण विश्वास रखता हूँ कि मानवी समाज में धर्म की सामयिक खल-बली मचती है और शिक्षित समाज में आजकल ऐसी ही खलबली फैली हुई है। यद्यपि ऐसी खल-बली अनेक छोटे-छोटे विभागों में विभक्त दिखाई देती है परन्तु मूलतः ये सब विभाग एक ही तत्व या तत्व-समष्टि से उद्भूत हैं, और यह बात उनके पारस्परिक सादृश्य से प्रमाणित होती है। वह धर्मभाव जिससे इस समय विचारवान व्यक्ति दिन प्रति दिन अत्यधिक मात्रा में प्रभावित होते जा रहे हैं—उसका एक वैशिष्ट्य यह है कि उससे जितने क्षुद्र क्षुद्र मतवाद उत्पन्न हो रहे हैं वे सब उसी एक अद्वैत तत्व की अनुभूति एवं अनुसन्धान में ही सचेष्ट हैं।

भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में यह एक भाव दिखाई दे रहा है कि विभिन्न मतवाद-समूह क्रमशः अधिकाधिक उदार होते हुए उसी शाश्वत अद्वैत तत्व की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस कारण वर्तमान काल के सभी आन्दोलन जान या अनजान में एकत्ववाद का जो सर्वोत्तम दर्शन आविष्कृत हो चुका है, उसके अर्थात् अद्वैत वेदान्त के प्रतिरूप हैं।

फिर यह भी सर्वदा देखा गया है कि प्रत्येक युग में इन समस्त विभिन्न मतवादों के संघर्ष के फलस्वरूप अन्त में एक ही मतवाद जीवित रहता है। अन्य सब तरंगें उसी मतवाद में विलीन होने के लिये एवं उसे एक बृहत् भाव-तरङ्ग में परिणत करने के लिये ही उठती हैं। फिर यह प्रबल भावस्रोत समाज को अप्रतिहत वेग के साथ प्लावित कर देता है।

इस समय भारत, अमेरिका व इङ्गलैंड में (जिन देशों का हाल मैं जानता हूँ) सैकड़ों ऐसे मतवादों का संघर्ष चल रहा है। भारत में द्वैतवाद क्रमशः हीनवीर्य हो रहा है; केवल अद्वैतवाद ही सब क्षेत्रों में प्रभावशाली है। अमेरिका में प्राधान्य-लाभ के लिए अनेक मतवादों के बीच संघर्ष उपस्थित हुआ है। यह सभी कम या अधिक अद्वैत भाव के प्रतिरूप हैं, और जो भाव-परम्परा सबसे अधिक तीव्र गति से फैल रही है वह उतनी ही मात्रा में अन्य भावों की अपेक्षा अद्वैत वेदान्त के अधिक अनुरूप प्रतीत होती है। अब मुझे यदि कुछ स्पष्ट दिखाई देता है तो वह यह कि इनमें से एक

ही भाव-परम्परा जीवित रहेगी। वह सब को निगल कर भविष्य में शक्तिमान होगी, किन्तु वह कौन सी भावप्रणाली होगी?

यदि हम इतिहास को देखें तो विदित होगा कि जो विचार-खण्ड सर्वश्रेष्ठ होगा वही जीवित रहेगा, और निष्कलंक चरित्र के समान अन्य कौनसी शक्ति है जो मनुष्य को यथार्थ योग्यता प्रदान कर सकती है? विचारशील मनुष्य जाति का अद्वैत ही भविष्य धर्म होगा। इसमें सन्देह नहीं। और सब सम्प्रदायों में उन्हीं की विजय होगी जो अपने जीवन में सब से अधिक चरित्र का उत्कर्ष दिखा सकेंगे—चाहे वे सम्प्रदाय कितने ही दूर भविष्य में क्यों न जन्म लें।

एक मेरी निजी अनुभव की बात सुनिये। जब मेरे गुरुदेव ने शरीर त्यागा था तब हम लोग बारह निर्धन और अज्ञात नवयुवक थे। हमारे विरुद्ध अनेक शक्तिशाली संस्थाएँ थीं जो हमें कुछ सफलता प्राप्त होने से पहले ही हमें नष्ट करने का भरसक प्रयत्न कर रही थीं। परन्तु श्रीरामकृष्ण देव ने हमें एक बड़ा दान दिया था—वह यह कि केवल बातें ही न कर यथार्थ जीवन बनाने की इच्छा, आजीवन उद्योग और विरामहीन साधना के लिए अनुप्रेरणा। और आज सारा भारत मेरे गुरुदेव को जानता है और पूज्य मानता है और वे सत्यसमूह जिनकी उन्होंने शिक्षा दी थी अब दावानल के समान फैल रहे हैं। दस वर्ष हुए उनका जन्मोत्सव मनाने के लिए मैं सौ मनुष्यों को भी इकट्ठा नहीं कर सकता था और पिछले वर्ष पचास सहस्र थे।

संख्याबल, धन, पाण्डित्य, वाक्चातुर्य—इनका कोई विशेष मूल्य नहीं है, परन्तु पवित्रता, शुद्ध जीवन एवं आत्मानुभूतिसम्पन्न महान व्यक्ति ही संसार में बड़े बड़े कार्य कर सकते हैं। प्रत्येक देश में ऐसी सिंह-आत्मा के समान दस-बारह व्यक्ति होने दो जिन्होंने अपने बंधन तोड़ दिए हैं, जिन्होंने 'अनन्त' का स्पर्श कर लिया है, जिनका चित्त ब्रह्मानुसन्धान में लीन है, जो न धन की चिन्ता करते हैं, न बल की, न नाम की—और ये व्यक्ति ही संसार को हिला डालने के लिए पर्याप्त होंगे।

यही जीवन का रहस्य है। योग-प्रवर्तक पतञ्जलि कहते हैं, "जब मनुष्य समस्त अलौकिक दैवी शक्तियों के लोभ का त्याग करता है तभी उसे धर्म-मेघ नामक समाधि प्राप्त होती है" ("प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः")। वह परमात्मा के दर्शन करता है, वह परमात्मा बन जाता है और दूसरों के बनने में भी सहायता करता है। मुझे इसी का प्रचार करना है। संसार में पर्याप्त मतवादों का प्रचार हो चुका है। लाखों पुस्तकें हैं, परन्तु हाय! कोई भी बिन्दु मात्र प्रत्यक्ष आचरण नहीं करता।

सभाएँ और संस्थाएँ स्वयं हो जाएँगी। क्या वहाँ ईर्ष्या हो सकती है जहाँ ईर्ष्या करने की कोई वस्तु ही न हो? जो हमें हानि पहुँचाना चाहेंगे ऐसे लोग असंख्य होंगे। परन्तु हमारे ही पक्ष में सत्य है, इसका क्या यह निश्चित प्रमाण नहीं है? जितना ही मेरा विरोध हुआ है उतना ही मेरी शक्ति का विकास हुआ है। राजाओं ने

मुझे अनेक बार निमंत्रित किया है और पूजा है। पुरोहितों और जन-साधारण ने मेरी निन्दा की है। परन्तु इससे क्या? सब को आशीर्वाद! वे सब तो मेरी स्वयं आत्मा हैं। और क्या उन्होंने कमानीदार पटरे (Spring-board) के समान मेरी सहायता नहीं की जहाँ से उछल कर मेरी शक्ति ने अधिकाधिक विकास कर लिया है?

....एक रहस्य का मैंने पता लगा लिया है—वह यह कि धर्म की केवल बातें करनेवालों से मुझे भय नहीं है। और जो सत्यद्रष्टा महात्मा हैं वे कभी किसी से वैर नहीं कर सकते। वाचालों को वाचाल बनने दो! वे इससे अधिक और कुछ नहीं जानते! उन्हें नाम, यश, धन, स्त्री से सन्तोष प्राप्त करने दो। और हम धर्मोपलब्धि, ब्रह्मलाभ एवं ब्रह्म होने के लिए ही दृढ़व्रत होंगे। हम मृत्यु-पर्यन्त एवं जीवन-प्रति जीवन में सत्य का ही सतत अनुसरण करेंगे। दूसरों के कहने पर हम तनिक भी ध्यान न दें और यदि आजन्म यत्न के बाद एक, और केवल एक ही आत्मा संसार के बंधनों को तोड़ कर मुक्त हो सके तो हमने अपना काम कर लिया। हरिः ॐ।

....एक शब्द और। निश्चय ही मुझे भारत से प्रेम है। परन्तु दिन प्रति दिन मेरी दृष्टि निर्मल होती जाती है। हमारे लिए भारत या इङ्गलैंड या अमेरिका क्या है? हम उस प्रभु के दास हैं जिसे अज्ञानी कहते हैं 'मनुष्य'। जो जड़ में पानी डालता है वह क्या पूरे वृक्ष को नहीं सींचता?

सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक कल्याण की एक ही नींव है—और वह यह जानना कि 'मैं और मेरा भाई एक हैं'। यह सब देशों और सब जातियों के लिए सत्य है। और मैं यह कह सकता हूँ कि पश्चिमी लोग इसका पूर्वीयों से शीघ्र अनुभव करेंगे—वह पूर्वीय जन जिन्होंने इस नींव के निर्माण में तथा कुछ थोड़ेसे अनुभूतिसम्पन्न व्यक्तियों को उत्पन्न करने में प्रायः अपनी सारी शक्ति व्यय करदी है। हम नाम, यश और दूसरों पर शासन करने की इच्छा से रहित होकर काम करें। काम, क्रोध एवं लोभ—इस त्रिविध बंधन से हम मुक्त हो जायँ। और फिर सत्य हमारे संग रहेगा। भगवत्पदाश्रित—

आपका,

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

लन्दन,

२४ अक्टूबर १८९५

प्रिय आलासिंगा,

....मैं अपना पहला व्याख्यान दे चुका हूँ और "स्टैन्डर्ड" को देखने से तुम जान सकोगे कि वह कितनी अच्छी तरह ग्रहण किया गया। ("स्टैन्डर्ड" एक अत्यन्त प्रभावशाली और परिवर्तन-विरोधी समाचार-पत्र है) मैं एक महीने तक लन्दन में रहूँगा। फिर

अमेरिका जाऊँगा। फिर दूसरी गर्मी में वापस आऊँगा। अब तक तुम देखोगे कि इङ्गलैण्ड में बीज अच्छा बोया गया है...

साहसी होकर काम करो। धीरज और स्थिरता से काम करना—यही एक मार्ग है। आगे बढ़ो और याद रखो कि धीरज, साहस, पवित्रता और स्थिरता से काम करना......यदि तुम पवित्र होकर अपने उद्देश्य पर जमे रहोगे, तो तुम कभी निष्फल नहीं होगे। माँ तुम्हें कभी न छोड़ेंगी और सब प्रकार का आशीर्वाद तुम पाओगे।

तुम्हारा
विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

लन्दन,
१८ नवम्बर १८९५.

प्रिय आलासिंगा,

इङ्गलैण्ड में मेरा काम आश्चर्यजनक है। उसे देख कर मैं स्वयं विस्मित हूँ। इङ्गलैण्ड-निवासी समाचार-पत्रों द्वारा अधिक प्रचार नहीं करते बल्कि चुपचाप काम करते हैं। अमेरिका की अपेक्षा इंग्लैण्ड में मैं निश्चय ही अधिक कार्य कर सकूँगा। वे दल बाँध-बाँध कर आते हैं और इतने लोगों को बैठाने का मेरे पास स्थान भी नहीं रहता, इसलिए वे स्त्रियों समेत पलथी मार कर जमीन पर

बैठते हैं। मैं उनसे कहता हूँ कि वे यह कल्पना करने का यत्न करें कि वे भारत के गगन-मण्डल के नीचे एक फैले हुए बट-वृक्ष की छाया तले बैठे हैं, और उन्हें यह विचार अच्छा लगा.........मुझे आगामी सप्ताह में जाना होगा। इससे वे बहुत ही उदास हैं। उनमें से कुछ यह समझते हैं कि इतनी जल्दी जाने से मेरे काम में हानि पहुँचेगी। परन्तु मैं ऐसा नहीं समझता। मैं मनुष्य या किसी वस्तु पर भरोसा नहीं करता, केवल भगवान पर भरोसा करता हूँ—और वे मेरे द्वारा कार्य करते हैं।

....बिना पाखण्डी और कायर बने सब को प्रसन्न रखो। पवित्रता और शक्ति के साथ अपने आदर्शों पर दृढ़ रहो और अब चाहे तुम्हारे सामने कैसी भी बाधाएँ आएँ, परन्तु कुछ समय बाद संसार तुमको मानेगा ही।

... बंगालियों के कथनानुसार मुझे मरने का भी समय नहीं है। काम, काम, काम। मैं इसी में लगा हूँ। मैं अपनी रोटी कमाता हूँ, अपने देश की सहायता करता हूँ, और यह सब अकेले; और फिर मित्रों तथा शत्रुओं से मुझे केवल बुराई ही बुराई मिलती है! खैर, तुम लोग तो बालक हो ही, मुझे सब सहन करना पड़ेगा.... मैंने कलकत्ते से एक संन्यासी को बुलाया है, और मैं उसे काम करने के लिये यहाँ छोड़ जाऊँगा। अमेरिका के लिए मैं एक और आदमी चाहता हूँ—मैं अपना आदमी चाहता हूँ, गुरु-भक्ति ही आध्यात्मिक उन्नति की नींव है।

....मैं निरन्तर काम करते-करते थक गया हूँ। कोई और हिन्दू होता, तो वह इतने काम से मर चुका होता........मैं भी दीर्घकाल तक विश्राम करने लिए भारत आना चाहता हूँ।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ सदैव तुम्हारा—
विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

न्यूयार्क,
२२८ डब्ल्यू० ३९ वीं स्ट्रीट,
२० दिसम्बर १८९५

प्रिय आलासिंगा,

........धीरज रखो और मृत्यु-पर्यन्त विश्वास पात्र रहो। आपस में न लड़ो। धन के व्यवहार में शुद्ध भाव रखो........हम अभी बहुत काम करेंगे......जब तक तुममें ईमानदारी, भक्ति और विश्वास है, तब तक सब चीजों में समृद्धि होगी।

........सूक्त का अनुवाद करने में भाष्यकारों पर विशेष ध्यान दो; परन्तु पश्चिमी संस्कृत-विद्वानों की कुछ परवाह न करो। वे हमारे शास्त्रों की एक बात भी नहीं समझते। शुष्क शब्द-शास्त्रज्ञों के लिए धर्म और तत्त्वज्ञान समझना उनके नसीब में नहीं है....उदाहरणार्थ ऋग्वेद का यह शब्द "आनीदवातम्" का अनुवाद किया "वह बिना साँस के जीवित रहा"। यहाँ असल में मुख्य प्राण का संकेत

है और "अव्रातम्" का मूल अर्थ है 'अचल' अर्थात् 'स्पन्दनरहित'। भाष्यकारों के अनुसार यह उस अवस्था का वर्णन है, जिसमें विश्व-शक्ति या प्राण कल्प के आरम्भ होने से पहले रहता है। हमारे ऋषियों के अनुसार अर्थ लगाओ, योरोपियन विद्वानों के अनुसार नहीं। वे क्या जानते हैं?

........वीर और निडर होओ और मार्ग साफ़ होगा........ याद रखो कि ट—वालों से तुम्हें कुछ काम नहीं है। यदि तुम सब मेरा साथ दोगे, और धीरज न छोड़ोगे, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हम अभी बड़े काम करेंगे। मेरे पुत्र, इङ्गलैण्ड में महान् कार्य होंगे धीरे-धीरे। मुझे ऐसा मालूम होता है कि कभी कभी तुम साहस छोड़ देते हो। तुम्हें ट—वालों के जाल में फँसने का प्रलोभन हो जाता है। याद रखो की गुरु-भक्त विश्वविजयी होता है। यह इतिहास का एक प्रमाण है........विश्वास मनुष्य को सिंह बना देता है। तुम्हें हमेशा याद रखना चाहिये कि मुझे कितना काम करना पड़ रहा है। कभी-कभी मुझे दिन में दो या तीन व्याख्यान देने पड़ते हैं—इस तरह मैं विघ्न और बाधाओं से निकलता हूँ—मेहनत से; मेरी अपेक्षा कोई निर्बल आदमी मर गया होता।

.....शक्ति और विश्वास न छोड़ो। सच्चे ईमानदार और निर्मल रहो, और आपस में न लड़ो। हमारी जाति का रोग ही ईर्ष्या है।

हमारे सब मित्रों को और तुम्हें मेरा प्यार—

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

१९ डब्ल्यू० ३८ वीं स्ट्रीट,
न्यूयार्क, १८९५

प्रिय आलासिंगा,

....समाज-सुधार जो कहलाता है, उसमें हस्तक्षेप न करो; क्योंकि आध्यात्मिक सुधार के बिना कोई सुधार नहीं हो सकता। ....भगवान का उपदेश करो —बुराइयों और कुसंस्कारों के विषय में न अच्छा कहो, न बुरा....निराश न होओ। गुरु और भगवान में विश्वास न छोड़ो। जब तक तुममें ये तीन गुण हैं, तब तक मेरे पुत्र, तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। मैं प्रति दिन बलवान होता जाता हूँ। मेरे वीर लड़को, काम करते रहो।

आशीर्वाद-पूर्वक सदैव तुम्हारा—
विवेकानन्द

(स्वामी रामकृष्णानन्दजी को)

यू. एस. ए.
१८९५

प्रिय शशि,

कल तुम्हारा पत्र मुझे मिला जिसमें समाचार कुछ अल्प अंश में था, परन्तु सविस्तार वर्णन किसी चीज़ का न था। मैं पहले से

बहुत अच्छा हूँ। ईश्वर की कृपा से इस वर्ष के विकट शीत से मैं सुरक्षित हूँ। ओरे यहाँ की भयंकर ठंड! परन्तु वैज्ञानिक ज्ञान से ये लोग इसे सब दबा कर रखते हैं। हर मकान में जमीन के नीचे एक तलगृह होता है जहाँ एक बहुत बड़ा पानी उबालने का पात्र है, वहाँ की भांप दिन रात हर कमरे में घुमाई जाती है। इस प्रकार कमरे गर्म रहते हैं परन्तु इसमें एक दोष है, वह यह कि घरों के अन्दर यद्यपि ग्रीष्म ऋतु होती है परन्तु बाहर शून्य से तीस चालीस डिग्री नीचे पारा रहता है। इस देश के अधिकांश धनवान शीतकाल में योरोप—जो कि यहाँ की तुलना में गर्म रहता है—चले जाते हैं।

अब मैं तुम्हें कुछ उपदेश दूँगा। यह पत्र विशेष रूप से तुम्हारे लिए है। कृपा करके प्रति दिन इसे एक बार पढ़ना और इसे व्यवहार में लाना। मुझे शारदा का पत्र मिला—वह अच्छा काम कर रहा है परन्तु अब हमें संगठन की आवश्यकता है। उसे, भाई तारक को, तथा औरों को मेरा विशेष प्रेम और आसीस कहना। तुम्हें इन थोड़े से आदेशों को देने का मुख्य कारण यह है कि तुममें संगठन की शक्ति है—ईश्वर ने मुझे यह ज्ञात कराया है—परन्तु उसका अभी पूर्ण विकास नहीं हुआ है। ईश्वरकृपा से वह *शीघ्र ही हो जायगा। तुम अपना समतोलन केन्द्र* (Centre of Gravity) कभी नहीं खोते * यही उसका प्रमाण है; परन्तु गम्भीर और उदार दोनों होना चाहिये।

---

* इसका तात्पर्य यह है कि तुम इधर-उधर न घूमकर एक ही जगह रहना पसंद करते हो।

१. सब शास्त्रों का कथन है कि संसार में जो त्रिविध दुःख हैं वह नैसर्गिक नहीं हैं, और वह हट सकते हैं।

२. बुद्ध अवतार में भगवान कहते हैं कि इस आधिभौतिक दुःख का कारण जाति ही है, आर्थात् जन्मगत, गुणगत या धनगत सब तरह जाति इन दुःखों का कारण है। आत्मा में लिंग, वर्ण या आश्रम या इस प्रकार का और कोई भेद नहीं होता, और जैसे कीचड़ के द्वारा कीचड़ नहीं धोया जाता इसी तरह से भेद-भाव से अभेद साधन होना असम्भव है।

३. कृष्ण अवतार में वे कहते हैं कि सब दुःखों का मूल अविद्या है और निष्काम कर्म चित्त को शुद्ध करता है। परन्तु "किं कर्म किमकर्मेति" इत्यादि; 'कर्म क्या है और अकर्म क्या है' इसका निर्णय करने में महात्मा भी मोह में पड़ जाते हैं।—गीता

४. जिस कर्म के द्वारा इस आत्म-भाव का विकास होता है वँही कर्म है। और जिसके द्वारा अनात्म-भाव का विकास होता है वही अकर्म है।

५. अतएव कर्म या अकर्म का निर्णय व्यक्तिगत, दशागत और कालगत परिस्थिति के अनुसार होना चाहिये।

६. यज्ञ जैसे कर्म प्राचीन काल में उपयोगी थे तथा जातिगत कर्म भी। परन्तु वर्तमान काल के लिए वैसा नहीं है।

७. रामकृष्ण अवतार की जन्मतिथि से सत्य युग का आरम्भ हुआ है........

८. रामकृष्ण अवतार में नास्तिक विचार............ज्ञान रूपी असी से नाश होंगे, और सम्पूर्ण जगत भक्ति और प्रेम से एक रूप होगा। इससे अधिक—इस अवतार में रजस् अर्थात् नाम यश इत्यादि की इच्छा का सर्वथा अभाव है। दूसरे शब्दों में, उसका जीवन धन्य है जो इस अवतार के उपदेश को व्यवहार में लायें, चाहे वह उन्हें (इस अवतार को) स्वयं मानें या न मानें।

९ आधुनिक या प्राचीन समय के विविध सम्प्रदायों के निर्माण-कर्ता अनुचित मार्ग पर न थे। उन्होंने अच्छा किया परन्तु उससे भी अच्छा करना है। श्रेष्ठ—श्रेष्ठतर—श्रेष्ठतम।

१०. इसलिए जो जिस स्थान पर हैं वही उसे ग्रहण करना होगा अर्थात् उसके इष्ट के भाव में आघात न कर उसे उच्चतर भाव में ले जाना होगा। जो इस समय सामाजिक परिस्थिति है वह अच्छी है, पर वह उत्कृष्टतम होगी।

११. स्त्रियों की अवस्था को बिना सुधारे जगत के कल्याण की कोई सम्भावना नहीं है। पक्षी का एक पंख से उड़ना सम्भव नहीं है।

१२. इस कारण रामकृष्ण-अवतार में 'स्त्री-गुरु' को ग्रहण किया गया है, इसीलिए उन्होंने स्त्री के रूप और भाव में साधना की, और

इस कारण ही जगत्-जननी की प्रतिरूप, स्त्रियों के मातृभाव का प्रचार हुआ।

१३. इसलिए मेरा पहला प्रयत्न स्त्रियों के मठ को स्थापित करने का है। इस मठ से गार्गी और मैत्रेयी और उनसे भी अधिक योग्यता रखनेवाली स्त्रियों की उत्पत्ति होगी....।

१४. पाखण्ड से कोई बड़ा काम पूरा नहीं हो सकता। प्रेम, सत्यानुराग और महावीर्य की सहायता से सब कर्म सम्पन्न होते हैं। 'तत् कुरु पौरुषम्' इसलिए पुरुषार्थ को प्रकट करो।

१५. किसी से लड़ने झगड़ने की आवश्यकता नहीं है। अपना संदेशा दे दो तथा औरों को अपने अपने भाव लेकर रहने दो। सत्यमेव जयते नानृतम्—"सत्य की ही जय होती है असत्य की नहीं" तदा किं विवादेन—तब क्यों लड़ते हो ?

....गम्भीरता के संग बालवत् सरलता को मिलाओ। सब के संग मेल से रहो। अहंकार के सब भाव छोड़ दो और साम्प्रदायिक विचारों को मन में न लाओ। व्यर्थ विवाद महापाप है।

....शारदा के पत्र से मालूम हुआ कि न—घोष ने मेरी क्राइस्ट आदि से तुलना की है। हमारे देश में इस प्रकार की बातें चल सकती हैं, परन्तु यदि तुम यहाँ ऐसा छपवा कर भेजो तो मेरा तिरस्कार होने की सम्भावना है! तात्पर्य यह है कि मैं किसी के

विचार की स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालना चाहता—क्या मैं मिशनरी हूँ? यदि काली ने वे पत्र अमेरिका नहीं भेजे हों तो उससे कह दो कि न भेजे। केवल अभिनन्दन-पत्र पर्याप्त होगा—कार्य-व्यवहार के वर्णन की आवश्यकता नहीं। इस देश के बहुत से माननीय स्त्री-पुरुष मुझे पूज्य मानते हैं। ईसाई मिशनरी और उनके जैसे दूसरे लोगों ने मुझे गिराने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु अपना यत्न निष्फल समझ कर अब चुप बैठे हैं। प्रत्येक कार्य को अनेक विघ्न-बाधाएँ पार करनी पड़ती हैं। शान्ति के मार्ग पर चलने से ही सत्य की विजय होती है। एक श्रीयुत हडसन ने मेरे विरुद्ध कुछ कहा था, उसका उत्तर देने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं। पहले तो ऐसा करना अनावश्यक है, दूसरे, मैं श्रीयुत हडसन और उनकी श्रेणी के मनुष्यों के समान अपने को गिरा लूँगा? क्या तुम पागल हो? एक श्रीयुत हडसन से क्या मैं यहाँ से लड़ूँगा? परमात्मा की कृपा से श्रीयुत हडसन से कहीं ऊँची पदवी के मनुष्य आदर से मुझे सुनते हैं। कृपा करके और पत्रों को मेरे पास न भेजो। ये सब बातें भारत में चलने दो इससे कोई हानि नहीं होगी। एक समय में ईश्वरीय कार्य के हेतु समाचार-पत्रों में ऐसी हलचल अच्छी थी। जब वह हो गई फिर अब उसकी आवश्यकता नहीं रही........नाम और यश के संग जाने वाले दोषों में से यह एक दोष है कि कोई बात अप्रकट नहीं रह सकती........किसी नए उद्योग को आरम्भ करने से पहले श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करो कि वे तुम्हें उत्तम मार्ग दिखाएँ।

हिन्दू धर्म कहें और दूसरे अपनी इच्छा के अनुकूल किसी और नाम से पुकारें। तुम्हें केवल धीरे धीरे आगे बढ़ना चाहिये, "शनैः पन्थाः" "यात्रा मन्दगति से करनी चाहिये"। दीनानाथ, जिसकी नई भर्ती की है, उसे मेरा आशीर्वाद कहना। मुझे लिखने को बहुत कम समय मिलता है—हमेशा व्याख्यान! व्याख्यान!! व्याख्यान!!! पवित्रता, धीरज, और निरन्तर उद्योग.......अधिक संख्या में आजकल जो लोग श्रीरामकृष्ण के उपदेशों की ओर ध्यान दे रहे हैं उनसे कुछ हद तक आर्थिक सहायता की प्रार्थना करो। यदि वे सहायता नहीं करेंगे तो मठ का निर्वाह कैसे हो सकता है? सब से यह स्पष्ट कहने में तुम्हें लज्जा नहीं मालूम होनी चाहिये.......

इस देश से शीघ्र ही लौटने में कोई लाभ नहीं है। पहली बात यह कि यहाँ थोड़ा शब्द होने से वहाँ प्रतिध्वनि बहुत होगी। फिर यहाँ के लोग अति धनवान हैं और देने का भी साहस रखते हैं। परन्तु हमारे देश के लोगों के पास न धन है और साहस तो तनिक भी नहीं।

तुम्हें धीरे-धीरे सब मालूम हो जायगा। क्या श्रीरामकृष्ण केवल भारत के उद्धार करने वाले थे? इस संकीर्ण भाव ने ही भारतवर्ष का नाश किया है, और उसका कल्याण असम्भव है जब तक यह भाव जड़ से न निकाला जायगा। यदि मेरे पास धन होता तो मैं तुममें से प्रत्येक को सारे संसार में भ्रमण करने भेजता। कोई भी महान् विचार हृदय में स्थान नहीं पा सकता है जब तक कि हम अपने

छोटे से कोने से बाहर न निकलें। समय पाकर यह प्रमाणित होगा। प्रत्येक महा कार्य धीरे-धीरे होता है। यही परमात्मा की इच्छा है....

तुम लोगों में से किसी ने हरीश और दक्ष के विषय में क्यों नहीं लिखा? यदि तुम उनके रहने के स्थान पर दृष्टि रखोगे तो मैं हर्षित होऊँगा। वह सन्याल दुःख का अनुभव कर रहा है, क्योंकि उसका मन अभी गंगाजल के समान निर्मल नहीं हुआ। अभी तक वह निःस्वार्थ नहीं है, परन्तु समय पाकर हो जायगा। यदि वह अपनी थोड़ी सी कुटिलता छोड़कर सीधा हो जाय तो उसका दुःख भी मिट जायगा। राखाल और हरि को मेरा विशेष प्रेम। उनकी ओर विशेष ध्यान देना....यह कभी न भूलना कि राखाल श्रीरामकृष्ण के प्रेम का विशेष पात्र था। किसी बात से तुम उत्साहहीन न होओ; जब तक ईश्वर की कृपा हमारे ऊपर है हमारी कौन उपेक्षा कर सकता है? यदि तुम्हारी यह अंन्तिम साँस भी हो तो भी न डरो। सिंह की शूरता से और पुष्प की कोमलता से काम करते रहो। इस वर्ष श्रीरामकृष्ण का उत्सव धूम-धाम से मनाओ। खाना-पीना साधारण रखो---एकत्रित लोगों में मिट्टी के बर्तनों में प्रसाद बिना किसी नियम के बाँट दो। यह पर्याप्त होगा। श्रीरामकृष्ण के जीवन में से पाठ होगा। वेद और वेदान्त जैसी पुस्तकों को संग रखकर उनकी आरती करो........पुरानी पद्धति के निमंत्रण-पत्र प्रकाशित मत करो।" आमन्त्रये भवन्तं साशीर्वादं भगवतो रामकृष्णस्य बहुमानपुरःसरम्‌:" "भगवान श्रीरामकृष्ण के आशीर्वाद से और हमारे

माननीय होकर हम आपको अति हर्ष के साथ आमंत्रित करते हैं" —इस प्रकार की पंक्तियाँ लिखकर फिर श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव और मठ के निर्वाह के लिए उनकी सहायता माँगो। और यदि वे चाहें तो अमुक नाम से, अमुक पते से रुपया भेज दें। एक पृष्ठ अँग्रेज़ी का भी जोड़ दो। 'प्रभु श्रीरामकृष्ण' पद का कोई अर्थ नहीं है। उसे त्याग दो। अँग्रेज़ी अक्षरों में 'भगवान' लिखो और कुछ पंक्तियाँ अँग्रेज़ी की आगे लगा दो। जैसे—

The Anniversary of Bhagwan Sri Ramakrishna.

Sir,

We have great pleasure in inviting you to join us in celebrating the—th Anniversary of Bhagwan Ramakrishna Paramhamsa. For the celebration of this great occasion and for the maintenance of the Alambazar Math, funds are absolutely necessary. If you think that the cause is worthy of your sympathy, we shall be very grateful to receive your contribution to the great work.

Yours obediently,

(Date) (Place) (Name)

भगवान श्रीरामकृष्ण का वार्षिकोत्सव।

महाशय,

भगवान रामकृष्ण परमहंस के—वें वार्षिक उत्सव को मनाने में सम्मिलित होने के लिए हम सहर्ष आपको आमंत्रित करते हैं।

इस सुअवसर को मनाने के लिए और आलमबाज़ार मठ को चलाने के लिए धन की नितान्त आवश्यकता है। यदि आप समझते हैं कि आपकी सहानुभूति के योग्य यह कार्य है तो इस महान कार्य के संचालन के लिए हम कृतज्ञता पूर्वक आपका दान स्वीकार करेंगे।

आज्ञापूर्वक आपका,

(तिथि) (स्थान) (नाम)

यदि तुम्हें आवश्यकता से अधिक धन मिले तो उसमें से थोड़ा सा ही व्यय करो, और बचे हुए रुपये को अपने खर्च के लिए संचित रखो। नैवेद्य चढ़ाने के बहाने से लोगों को इतनी देर प्रतीक्षा न करवाओ कि वे अस्वस्थ हो जाएँ और फिर उन्हें बासा और स्वादहीन भोजन करना पड़े। दो फिल्टर बनवा लो और पकाने और पीने के लिए फिल्टर का पानी काम में लाओ। छानने से पहले पानी उबाल लो। यदि तुम ऐसा करोगे तो मलेरिया का नाम नहीं सुनोगे। सब के स्वास्थ्य पर तीक्ष्ण दृष्टि रखो। यदि तुम ज़मीन पर लेटना छोड़ सकते हो अर्थात् यदि तुम्हें ऐसा करने के लिए पर्याप्त धन मिल सकता है तो अति उत्तम होगा। रोग का मुख्य कारण गन्दे कपड़े होते हैं....मैं तुमसे कहता हूँ कि भोग के लिए थोड़ा सा पायसान्नम् भी पर्याप्त होगा। उन्हें केवल वही प्रिय था। यह सत्य है कि पूजा-गृह से बहुत से लोगों को सहायता मिलती है, परन्तु राजसिक और तामसिक भोजन करना उचित नहीं। विधियों को कुछ कम करके गीता या उपनिषद् या शास्त्रों के अध्ययन को

कुछ स्थान दो। मेरा मतलब यह है—भौतिकता को कम से कम कर दो और आध्यात्मिकता को अधिक से अधिक मात्रा में बढ़ा दो। ....श्रीरामकृष्ण क्या किसी विशेष व्यक्ति के लिए आये थे या संसार के लिए? यदि संसार के लिए तो उनके जीवन का इस तरह दिग्दर्शन करो कि सारा संसार उन्हें समझ सके। किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखित श्रीरामकृष्ण के जीवन-चरित्र से तुम अपना नाम किसी प्रकार सम्बन्धित न करना और न अपनी स्वीकृति ही किसी ऐसे ग्रंथ के लिए देना। इन जीवन-चरित्रों के साथ हम लोगों का नाम न जुड़ा रहना चाहिए, बस् फिर कोई हर्ज नहीं। 'सुनिए सब की—करिए मन की'।

........महेन्द्र बाबू ने हमारी सहायता करके कृपा की, इसके लिए उन्हें सहस्रों बार धन्यवाद। वे बड़े उदारहृदय व्यक्ति हैं... ....सन्याल यदि अपना काम ध्यान से करेगा अर्थात् श्रीरामकृष्ण की सन्तान की सेवा, तो वह सर्वोत्तम कल्याण को प्राप्त करेगा।...... भाई तारक बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। शाबाश! बहुत अच्छा! यही हम चाहते हैं। अनेक पुच्छल तारों की तरह मैं तुम लोगों को उज्ज्वल एवं प्रभावशाली देखना चाहता हूँ। गङ्गाधर क्या कर रहा है? राजपूताने के कुछ ज़मींदार उसका आदर करते हैं। उससे कहो कि वह भिक्षा-रूप में लोकसेवा के लिये उनसे कुछ धन ले; तभी तो बात है।...

अभी मैंने अक्षय की पुस्तक पढ़ी। मेरी ओर से उसे लाखों स्नेहमय आलिंगन। उसकी लेखनी से श्रीरामकृष्ण प्रकट हो रहे हैं।

धन्य है अक्षय ! उसे उस 'पोथी' का पाठ सब के सामने करने दो। उत्सव के दिन उससे सब के सामने पाठ करवाना। यदि पुस्तक बहुत बड़ी हुई तो उसमें से विशेष भाग पढ़ने दो। अच्छा, उसमें मैं एक भी असम्बद्ध - शब्द नहीं पाता हूँ। उस किताब के पढ़ने से मुझे जो आनन्द हुआ है उसका मैं शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। तुम सब यत्न करके उसकी बहुत बिक्री करवाओ। फिर अक्षय से कहो कि गाँव-गाँव जाकर प्रचार करे। शाबाश अक्षय ! वह अपना काम कर रहा है। गाँव-गाँव जाकर श्रीरामकृष्ण के उपदेश की घोषणा करो। इससे अधिक सौभाग्य और क्या हो सकता है ? मैं कहता हूँ कि स्वयं अक्षय और उसकी पुस्तक—दोनों को जनता में एक प्रकार का विद्युत् संचार कर देना चाहिये। प्रिय, प्रिय अक्षय, मैं हृदय से तुम्हें आसीस देता हूँ। मेरे प्यारे भाई ! भगवान तुम्हारी जिह्वा पर विराजमान रहें। जाओ, द्वार-द्वार उनका उपदेश सुनाओ। तुम्हें सन्यासी बनने की कोई आवश्यकता नहीं है.... बंगाल की जनता के लिए भविष्य में अक्षय ईश्वरी दूत होगा। अक्षय का खयाल रखना। उसकी भक्ति और श्रद्धा फलवती हुई हैं।

अक्षय से कहना कि अपनी पुस्तक के तृतीय भाग "धर्म-प्रचार" में वह निम्नलिखित बातें लिखे :

१. वेद-वेदान्त तथा अन्य अवतारों ने जो भूतकाल में किया, श्रीरामकृष्ण ने उसकी साधना एक ही जीवन में कर डाली।

२. वेद-वेदान्त, अवतार और इस प्रकार की अन्य बातें कोई समझ नहीं सकता जब तक वह उनका जीवन न समझे; क्योंकि वही उनकी व्याख्या है।

३. उनके जन्म की तिथि से सत्य-युग आरम्भ हुआ है। इसलिए अब सब प्रकार के भेदों का अन्त है और सब लोग चण्डाल सहित उस दैवी प्रेम के भागी होंगे। पुरुष और स्त्री, धनी और दरिद्र, शिक्षित और अशिक्षित, ब्राह्मण और चण्डाल—इन सब भेद-भावों का मूल नष्ट करने के लिए उनका जीवन व्यतीत हुआ था। वे शान्ति के दूत थे—हिन्दू और मुसलमानों का भेद, हिन्दू और ईसाइयों का भेद—ये सब भूतकालीन हो गए हैं। श्रेष्ठता के झगड़े —वे दूसरे युग से सम्बन्ध रखते हैं। इस सत्य युग में श्रीरामकृष्ण के प्रेम की विशाल लहर ने सबको एक कर दिया है।

उससे कहो कि इन विचारों को वह विस्तार पूर्वक अपनी शैली में लिखे।

जो कोई—पुरुष या स्त्री—श्रीरामकृष्ण की उपासना करेगा वह चाहे कितना ही पतित क्यों न हो, तत्काल ही उच्चतम में परिणत हो जायगा। एक बात और है, इस अवतार में परमात्मा का मातृभाव विशेष स्पष्ट है। वे स्त्रियों के समान कभी कभी वस्त्र पहनते थे—वे मानो हमारी जगन्माता जैसे ही थे—इसलिए हमें सब स्त्रियों को उस जगन्माता की ही मूर्तियाँ मानना चाहिये। भारत में दो बड़ी

बुरी बातें हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति-भेद के द्वारा पीसना। वे स्त्रियों के रक्षक थे, जनता के रक्षक थे, ऊँच और नीच सब के रक्षक। अक्षय उनकी उपासना सब घरों में प्रचलित कर दे, चाहे ब्राह्मण हो या चण्डाल, पुरुष हो या स्त्री —सब को उनकी पूजा का अधिकार है। जो प्रेम से उनकी पूजा करेगा उसका सदा के लिये कल्याण हो जायगा।

उससे कहना इस पद्धति से लिखे। किसी बात की चिन्ता न करे। भगवान उसके साथ रहेंगे।

प्रेमपूर्वक तुम्हारा,
विवेकानन्द

पु० ....सन्याल से कहना कि नारद और शांडिल्य सूत्र की एक-एक प्रति और एक योग-वासिष्ट जिसका अनुवाद अभी कलकत्ते में हुआ है मुझे भेजे। मुझे योग-वासिष्ठ का अँग्रेजी अनुवाद चाहिये, बंगला संस्करण नहीं ...

(मि० ई. टी स्टर्डी को)

२२८ डब्ल्यू ३९ वीं स्ट्रीट, न्यूयार्क,
१३ फरवरी १८९६

भाग्यवान और प्रियतम,

उस संन्यासी के सम्बन्ध में, जो भारत से आ रहा है, मुझे विश्वास है कि अनुवाद के काम में तथा दूसरे कामों में भी वह

तुम्हारी सहायता करेगा। बाद में जब मैं आऊँगा तब कदाचित् मैं उसे अमेरिका भेज दूँगा। आज एक और संन्यासी हो गये हैं। इस बार वे ऐसे व्यक्ति हैं जो कि सच्चे अमेरिकन हैं और इस देश में प्रतिष्ठित धर्म-प्रचारक हैं। उनका पहला नाम था—डाक्टर स्ट्रीट, अब वे योगानन्द हैं, क्योंकि उनकी सब रुचि योग की ओर है।

मैं 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका को नियमपूर्वक वृत्तान्त लिखकर भेजता रहा हूँ। वे शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। किसी वस्तु को भारत पहुँचने में बहुत विलम्ब होता है। अमेरिका में काम की वृद्धि उदारता से हो रही है, क्योंकि यहाँ आरम्भ से ही कुछ धोखा-धड़ी नहीं था इसलिए अमेरिकन समाज के सर्वोच्च वर्ग को वेदान्त अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। सेराह बर्नहार्ट, फ्रेंच अभिनेत्री, यहाँ 'इज़ील' नाटक में अभिनय कर रही हैं। यह एक प्रकार का फ्रेंच रूप में बुद्ध देव का जीवन-चरित्र है जिसमें एक इज़ील नामक वेश्या वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए बुद्ध देव को पाप में प्रवृत्त करना चाहती है। जिस समय वह उनकी गोद में बैठी है बुद्ध देव उसे संसार की असारता का उपदेश देते हैं। अस्तु; 'अन्त भला सो भला'—अन्त में वह वेश्या असफल होती है। श्रीमती बर्नहार्ट वेश्या का अभिनय करती हैं।

मैं इस 'बुद्ध' नाटक को देखने गया था और श्रीमतीजी ने मुझे श्रोतागणों में देखकर मुझसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। एक प्रतिष्ठित और परिचित परिवार ने मिलने की व्यवस्था की। इनके अतिरिक्त वहाँ पर श्रीमती एम.मौरेल (एक नामी गायिका) और विद्युत्

विज्ञान में अति निपुण श्रीयुत टेस्ला भी थे। श्रीमतीजी एक विदुषी महिला हैं और उन्होंने अध्यात्मविद्या का अच्छा अध्ययन किया है। श्रीमती मौरेल की भी इस विद्या में रुचि बढ़ रही है, और श्रीयुत टेस्ला वैदान्तिक प्राण, आकाश और कल्प के सिद्धान्त सुनकर बिलकुल मुग्ध हो गए। उनके कथनानुसार आधुनिक विज्ञान केवल इन सिद्धान्तों को ग्रहण कर सकता है। अब आकाश और प्राण दोनों विश्व (Cosmic) महत्, हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा या ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। श्रीमान् टेस्ला समझते हैं कि गणित-शास्त्र की सहायता से वे यह प्रमाणित कर सकते हैं कि द्रव्य और शक्ति अव्यक्त प्राण में रूपान्तरित हो सकते हैं। गणित-शास्त्र के इस नवीन प्रमाण को पाने के लिये मैं आगामी सप्ताह में उनसे मिलने जाने वाला हूँ।

ऐसा होने से वैदान्तिक विश्व-विज्ञान अत्यन्त सुरक्षित नींव पर स्थित रहेगा। मैं आजकल वैदान्तिक विश्व-विज्ञान और एस्केटालाजी (Eschatology) * में बहुत कुछ काम कर रहा हूँ। आधुनिक विज्ञान के साथ उनका पूर्ण सामञ्जस्य मैं स्पष्ट रूप से देखता हूँ, और एक की व्याख्या के बाद दूसरे की भी हो जायगी। मैं बाद में प्रश्नोत्तर के रूप में एक पुस्तक लिखने का विचार करता हूँ। उसका पहला अध्याय विश्वविज्ञान पर होगा, जिसमें वैदान्तिक सिद्धान्त और आधुनिक विज्ञान का सामञ्जस्य दिखाया जायगा।

---

* मृत्यु, अन्तिम निर्णय (Judgment) आदि जीवन के बाद घटनेवाली घटनाओं के बारे में एक मतवाद।

तो वह समुद्र ही है। परन्तु वे नाम और रूप तत्काल ही सदा के लिए नष्ट हो गये। इसलिए उस तरङ्ग का नाम और रूप जल के बिना नहीं हो सकते। उसी जल से नाम और रूप ने तरङ्ग का निर्माण किया, परन्तु फिर भी वे स्वयं तरङ्ग नहीं हैं। जैसे ही तरङ्ग पानी बन जाती है वैसे ही नाम और रूप का लोप हो जाता है, परन्तु दूसरे नाम और रूप, जिनका दूसरी तरङ्गों से सम्बन्ध है, जीवित रहते हैं। यह नाम और रूप माया कहलाता है, और पानी ब्रह्मन् है। सब काल में तरङ्ग पानी ही है, परन्तु फिर भी तरङ्ग के रूप में उसका नाम और रूप है। पुनः, ये नाम और रूप एक क्षण के लिए भी पानी से पृथक् होकर नहीं रह सकते, यद्यपि तरङ्ग जल-रूप में अनन्त काल तक नाम और रूप से पृथक् होकर रह सकती है। परन्तु नाम और रूप पृथक् नहीं किए जा सकते इसलिये उनका अस्तित्व नहीं माना जा सकता। फिर भी वे शून्य नहीं हैं। यही है माया।

मैं इसका सावधानी से विवेचन करना चाहता हूँ, परन्तु तुरन्त ही तुम देख लोगे कि मैं ठीक राह पर हूँ। ऊँचे व नीचे केन्द्रों के परस्पर सम्बन्ध को जानने के लिए शारीरिक विज्ञान का अधिक अध्ययन करने की आवश्यकता है और इससे मन, चित्त और बुद्धि आदि सम्बन्धी मनोविज्ञान पूरा किया जायगा। परन्तु अब धोखे से रहित मेरे मन में स्पष्ट प्रकाश पड़ रहा है। मैं चाहता हूँ उन्हें रूखा और कठोर तर्क देना, जो प्रेम के अति मधुर रस से कोमल

किया गया हो, उत्कट कर्म से सुगन्धित मसालेदार बना हो और योग की रसोई में पका हो, जिससे उसे एक शिशु भी सहज रूप से पचा सके। आशीर्वाद और प्रेम सहित

तुम्हारा,
विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

१७ फरवरी १८९६

प्रिय आलासिंगा,

......काम बहुत कठिन है; जैसे-जैसे काम की वृद्धि हो रही है वैसे-वैसे काम की कठिनता भी बढ़ती जा रही है। मुझे आराम की बड़ी ज़रूरत मालूम पड़ रही है। परन्तु इङ्गलेंड में एक बड़ा काम मेरे सामने खड़ा है।.........मेरे पुत्र, धीरज रखो, वह तुम्हारी आशा से बहुत ज्यादा बढ़ जायगा.........हर एक काम में सफलता प्राप्त करने से पहले सैकड़ों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जो उद्यम करते रहेंगे वे आगे या पीछे प्रकाश को देखेंगे——.

........न्यूयार्क, जो अमेरिकन सभ्यता का एक प्रकार का हृदय है उसे जगाने में मैंने सफलता प्राप्त की है। परन्तु भीषण कठिनाइयों से लड़ना पड़ा.........जो शक्ति मेरे पास थी वह न्यूयार्क और इङ्गलैंड पर प्रायः न्यौछावर कर दी। अब सब चीजें ढंग से बैठी हैं और काम चलता जायगा।

हिन्दू भावों को अँग्रेजी में व्यक्त करना, फिर शुष्क दर्शन, पेचीदी पौराणिक कथाएँ, और अनूठ आश्चर्य-जनक मनोविज्ञान से एक धर्म निर्माण करना, जो कि सरल, सहज और लोकप्रिय हो और उसके साथ ही उन्नत हृदयों को संतुष्ट कर सके—इस कार्य की कठिनाइयों को वे ही समझ सकते हैं, जिन्होंने इस कार्य का बीड़ा उठाने का प्रयत्न किया हो। अद्वैत के गूढ़ सिद्धान्तों में कविता का रस, और नित्य कर्मों में जीवनदायिनी शक्ति उत्पन्न करनी है; अत्यन्त उलझी हुई पौराणिक कथाओं में से साकार नीति के नियम निकालने हैं; और बुद्धि को बहकाने वाली योग-विद्या से अत्यन्त वैज्ञानिक और क्रियात्मक मनोविज्ञान का विकास करना है— यह सब ऐसे रूप में लाना पड़ेगा कि बच्चा-बच्चा इसे समझ सके। मेरे जीवन का यही कार्य है। परमात्मा ही जानता है कि कहाँ तक यह काम मैं कर पाऊँगा। कर्म करने का हमें अधिकार है, उसके फल का नहीं। परिश्रम करना है मेरे पुत्र, कठिन परिश्रम! काम-काञ्चन के इस चक्कर में अपने आप को स्थिर रखना, और अपने आदर्शों पर जमे रहना, जब तक कि आत्म-ज्ञान और पूर्ण त्याग के साँचे में शिष्य न ढल जायँ, निश्चय ही कठिन काम है। धन्य हैं परमात्मा कि अब तक बड़ी सफलता हमें मिलती रही है। मैं मिशनरी आदि लोगों को दोष नहीं दे सकता कि वे मुझे समझने में असमर्थ हुए। उन्होंने शायद ही कभी ऐसा पुरुष देखा होगा, जो धन और स्त्रियों की ओर आकर्षित न हो। पहले तो वे विश्वास ही नहीं करते थे, और करते भी कैसे! तुम्हें यह नहीं समझना चाहिये कि पश्चिमी

देश में ब्रह्मचर्य और पवित्रता के वही आदर्श हैं, जो भारत में हैं। इन लोगों के सद्गुण और साहस उसके बदले में पूजित हैं....... मेरे पास अब लोगों के झुंड के झुंड आ रहे हैं। अब सैकड़ों मनुष्यों को विश्वास हो गया है कि ऐसे भी मनुष्य हो सकते हैं, जो अपनी शारीरिक वासनाओं को वशीभूत कर सकते हैं। इन आदर्शों के लिए अब सम्मान और प्रीति बढ़ते जा रहे हैं। जो प्रतीक्षा करता है, उसे सब चीजें मिलती हैं। अनन्त काल तक तुम भाग्यवान होओ।

तुम्हारा,

विवेकानन्द

बोस्टन,

२३ मार्च १८९६

प्रिय आलासिंगा,-

....मेरे नए संन्यासियों में निश्चय ही एक स्त्री है..........शेष सब पुरुष हैं। मैं इङ्गलैण्ड में कुछ थोड़े से और संन्यासी बनाकर भारत अपने संग लाऊँगा। भारत में इनके सफेद वर्ण का प्रभाव हिन्दुओं से भी अधिक होगा और इसके अतिरिक्त ये फुर्तीले हैं, जब कि हिन्दू मृतप्राय हैं। भारत में आशा केवल सर्वसाधारण जनता से है। उच्च श्रेणी के लोग शारीरिक और नैतिक दृष्टि से मृतवत् हैं।....

मेरी सफलता का कारण मेरी लोकप्रिय शैली है।—हर गुरु की बड़ाई उसकी सरल भाषा होती है।

.........मैं अगले महीने इङ्गलैण्ड जा रहा हूँ। मुझे डर है कि मैंने अत्यधिक काम किया है। इस दीर्घकाल तक लगातार काम से मेरी नसों की शक्ति नष्ट होगई है। मैं तुमसे सहानुभूति नहीं चाहता; परन्तु मैं इसलिए यह लिखता हूँ कि तुम मुझसे अब कुछ अधिक आशा न रखो। जितने अच्छे ढंग से तुम कार्य कर सको, उतना करो। अब मुझे बहुत कम आशा है कि मैं बड़े-बड़े काम कर सकूँगा। परन्तु मुझे हर्ष है कि मेरे व्याख्यानों के संक्षिप्त अक्षरों में स्मरण-लेख (Stenographic notes) से बहुत-सा साहित्य उत्पन्न हुआ है। चार किताबें तैयार हैं..................मुझे सन्तोष है कि मैंने भलाई करने का भरसक प्रयत्न किया है और जब मैं काम छोड़ कर एकान्त सेवन के लिए गुफ़ा में जाऊँगा, तब मेरा अन्तःकरण मुझे दोष न देगा।

सब को प्यार और आशीर्वाद के साथ—

विवेकानन्द

यू. एस. ए.
मार्च १८९६

प्रिय आलासिंगा,

काम बढ़ाए चलो। मैं जो कर सकता हूँ, करूँगा.........यदि परमात्मा की इच्छा हुई, तो गेरुए वस्त्र वाले साधु यहाँ और इङ्गलैण्ड में काफी संख्या में दिखाई देंगे। मेरे बच्चों, काम करो।

याद रखो कि जब तक गुरु में तुम्हारी भक्ति है, तुम्हारा विरोध कोई नहीं कर सकेगा। पश्चिमियों की दृष्टि में तीनों भाष्यों का अनुवाद बहुत बड़ी बात होगी।

.........धैर्य रखो, बच्चे, धीरज रखकर काम करो! धीरज, धीरज!...........उपयुक्त समय आने पर मैं जनता के सम्मुख एकदम आ पहुँचूँगा।

प्रेम से तुम्हारा—

विवेकानन्द

(डा. नान्जुन्दा राव, एम. डी., को)

न्यूयार्क,

१४ अप्रैल १८९६

प्रिय डाक्टर,

मुझे तुम्हारा पत्र आज सबेरे मिला। मैं कल इङ्गलैण्ड के लिए रवाना हो रहा हूँ, इसलिए मैं कुछ थोड़ी सी भावनापूर्ण पंक्तियाँ ही लिख सकूँगा। लड़कों की पत्रिका प्रकाशित करने का जो तुम विचार कर रहे हो, उससे मुझे हर तरह सहानुभूति है, और मैं उसकी सहायता करने का पूरा-पूरा यत्न करूँगा। उसे (आर्थिक) स्वाधीनता होनी चाहिये; 'ब्रह्मवादिन्' पत्रिका की पद्धति का अनुसरण करो, केवल तुम्हारी पत्रिका की लेखन-शैली और

९. जो आक्षेप करना या क्रोध दिखाना चाहे वह मठ की सीमा के बाहर ऐसा करे। इससे किंचित् भी विचलित न होना चाहिये।

शासन विभाग

१. प्रति वर्ष अध्यक्ष का बहुमत से चुनाव होगा। अगले वर्ष दूसरे का, और आगे भी इसी तरह से।

२. इस वर्ष राखाल को अध्यक्ष बना दो, इसी प्रकार किसी और को मंत्री, और पूजा भोजन इत्यादि की देख भाल के लिए किसी तीसरे व्यक्ति का चुनाव करो।

३. मंत्री का एक और कर्तव्य होगा अर्थात् सामान्य स्वास्थ्य के विषय में सचेत रहना। इस सम्बन्ध में मुझे तीन आदेश देने हैं।

(क) प्रत्येक कमरे में प्रत्येक मनुष्य के लिए एक निवाड़ी पलंग और गद्दा आदि होंगे। हर एक को अपना कमरा साफ रखना होगा।

(ख) पीने और पकाने के लिए स्वच्छ और निर्मल जल का प्रबन्ध करना होगा। अशुद्ध और मलिन जल में हविष्यान्न पकाना महा पाप है।

(ग) हर एक को दो गेरुए वस्त्र दो, जैसे शरद के लिए तुमने बनाए, और यह देखो कि वे साफ रखे जाते हैं।

४. जो संन्यासी बनना चाहे उसे पहले ब्रह्मचारी बनाया जाय। एक वर्ष वह मठ में रहे और एक वर्ष बाहर रहे, तत्पश्चात् संन्यास की उसे दीक्षा दी जाय।

५. पूजा का काम इन्हीं में से एक ब्रह्मचारी को सौंपो और थोड़े समय बाद उन्हें बदलते रहो।

विभाग

मठ में निम्न लिखित विभाग होंगे :

१. अध्ययन   २. प्रचार   ३. धार्मिक साधना

१. अध्ययन—जो अध्ययन करना चाहते हैं उनके लिए पुस्तकों और शिक्षकों का प्रबन्ध करना इस विभाग का उद्देश्य होगा। प्रातः और सायं प्रति दिन शिक्षकों को उनके लिए तैयार रहना चाहिये।

२. प्रचार—मठ के अन्दर व बाहर।

मठ के प्रचारकों को यह कार्य करना होगा कि वे अन्वेषकों को धर्मग्रंथों में से पढ़कर सुनायें और उन्हें शिक्षा दें। साथ ही प्रश्न-कक्षा द्वारा भी वे उन्हें उपदेश दें। बाहर के उपदेशकों को गाँव-गाँव जाकर उपदेश देना चाहिये और उपरोक्त मठ भी भिन्न भिन्न स्थानों में स्थापित करने का यत्न करना चाहिये।

३. आध्यात्मिक साधना—जो लोग साधना करना चाहते हैं, यह विभाग उन लोगों की आवश्यकता को पूरा करने का यत्न करेगा। परन्तु जो व्यक्ति धार्मिक साधना में लगा है वह दूसरों को अध्ययन या उपदेश देने से नहीं रोक सकेगा। जो भी इस नियम का उल्लंघन करेगा उसे तुरन्त ही निकल जाने के लिए कहा जायगा। यह अनिवार्य है।

मठ के भीतर के उपदेशकों को भक्ति, ज्ञान, योग और कर्म पर बारी-बारी से शिक्षा देनी चाहिये। इसके लिए दिन और समय नियुक्त होना चाहिये और यह नित्य का कार्यक्रम कक्षा के दरवाजे पर लगा देना चाहिये। अर्थात्—भक्तिमार्ग के साधकों को जिस दिन ज्ञान के विषय पर कक्षा हो उस दिन उपस्थित नहीं रहना चाहिये जिससे उनकी भक्ति को कहीं हानि न पहुँचे,—इत्यादि इत्यादि।

तुम लोगों में से कोई भी वामाचार साधना के योग्य नहीं हो। इसलिए मठ में इसकी साधना किसी प्रकार भी न होनी चाहिये। जो इसमें तनिक भी शंका करे वह इस संघ को छोड़ दे। इस साधना का मठ में कभी नाम भी न लिया जाये। जो दुष्ट, गुरु-महाराज के संघ में, अधम वामाचार का प्रचार करेगा उसका लोक और परलोक में नाश होगा।

कुछ सामान्य सूचनाएँ

१. यदि कोई स्त्री किसी संन्यासी से बात करने आए तो उसे अभ्यागतों के कमरे में संन्यासी से मिलना चाहिये। कोई स्त्री पूजा-गृह को छोड़ कर किसी और कमरे में प्रवेश नहीं कर सकती।

२. किसी संन्यासी को स्त्रियों के मठ में रहने की आज्ञा न होगी। जो संन्यासी इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा वह मठ से निकाल दिया जायगा। "दुष्ट पशुसमूह से रिक्त पशुशाला अच्छी है।"

३. दुष्ट चरित्र वाले मनुष्यों को कठोरता से बाहर रखा जायगा। किसी बहाने से उनकी छाया भी मेरे कमरे की देहली को पार नहीं कर सकती। यदि तुममें से कोई भी दुराचारी हो जाय, तो उसे तुरन्त निकाल दो; चाहे वह कोई भी हो। हमें नीच मनुष्य नहीं चाहिये। ईश्वर अच्छे-अच्छे लोगों को लायेंगे।

४. कोई भी स्त्री पढ़ने के कमरे में (या उपदेश वाले स्थान में) कक्षा के समय या उपदेश के घंटे में आसकती है परन्तु नियत काल के पश्चात् उसे तुरन्त वह स्थान त्याग देना चाहिये।

५. कभी क्रोध न प्रकट करो, ईर्ष्या को मन में आश्रय न दो, और चुपके-चुपके किसी की चुगली न करो। अपने दोषों को दूर करने की जगह दूसरों के दोष देखना, यह निर्दयता और कठोर हृदय की पराकाष्ठा है।

६. भोजन का नियत समय होना चाहिये। सबके लिए एक आसन और एक नीची चौकी होनी चाहिये, जिसमें वह आसन पर बैठ सके और चौकी पर थाली रख सके जैसा कि राजपूताने में नियम है।

पदाधिकारी

सब पदाधिकारियों का चुनाव गुप्त रूप से होना चाहिये, यह भगवान् बुद्ध का आदेश था, अर्थात् एक मनुष्य यह प्रस्ताव करे कि अमुक साधु इस वर्ष का अध्यक्ष हो; और सब को कागज़ के टुकड़ों पर 'हाँ' या 'नहीं' लिख कर उन्हें एक घड़े में डाल

देना चाहिये। यदि अधिकांश 'हाँ' निकले तो वह अध्यक्ष चुना जाना चाहिये, इत्यादि। यद्यपि पदाधिकारियों का चुनाव इस प्रकार होना चाहिये तथापि मेरा यह प्रस्ताव है कि इस वर्ष राखाल अध्यक्ष, तुलसी मंत्री और कोषाध्यक्ष, गुप्त पुस्तकालयाध्यक्ष बनाए जायँ, और शशि, काली, हरि और शारदा शिक्षा और प्रचार के काम का बारी-बारी से भार उठायें, इत्यादि।

निस्सन्देह ही एक पत्रिका आरम्भ करने का शारदा का विचार उत्तम है। परन्तु मैं उसे स्वीकार तब करूँगा जब तुम सब लोग उसे मिलकर चला सको।

मतों आदि के बारे में मुझे यही कहना है कि यदि कोई श्रीरामकृष्ण देव को अवतार आदि स्वीकार करे तो अच्छा है, यदि न करे तो भी ठीक ही है। परन्तु सच बात तो यह है कि चरित्र के विषय में श्रीरामकृष्ण देव सबसे आगे बढ़े हुए हैं। उनके पहले जो अवतारी महापुरुष हुए हैं उनसे वे अधिक उदार, अधिक मौलिक और अधिक उन्नतिशील थे। अर्थात् प्राचीन आचार्य एक-देशीय थे, परन्तु इस नए अवतार या आचार्य की शिक्षा यह है कि योग, भक्ति, ज्ञान और कर्म के सर्वोच्च भावों का सम्मिलन होना चाहिये जिससे एक नए समाज का निर्माण हो सके......प्राचीन आचार्य निस्सन्देह अच्छे थे परन्तु यह इस युग का नया धर्म है—अर्थात् योग, ज्ञान, भक्ति और कर्म का समन्वय—आयु और लिंग भेद के बिना,

पतित से पतित तक में ज्ञान और भक्ति का प्रचार। पहले के अवतार ठीक थे परन्तु श्रीरामकृष्ण के व्यक्तित्व में उनका समन्वय हो गया है। साधारण मनुष्य और नव-सिखिए के लिए आदर्श में निष्ठा होनी विशेष महत्व पूर्ण है। अर्थात् उन्हें यह सिखाओ कि यद्यपि सब महापुरुषों का यथोचित आदर करना चाहिये, तथापि अब श्रीरामकृष्ण की उपासना होनी चाहिये। दृढ़ निष्ठा के बिना पौरुष नहीं हो सकता। उसके बिना हनुमान जैसी शक्ति से कोई उपदेश नहीं कर सकता। फिर, पिछले महापुरुष अब कुछ प्राचीन हो चले हैं। अब नवीन भारत है जिसमें नवीन ईश्वर, नवीन धर्म और नवीन वेद हैं। हे भगवन्, भूतकाल पर निरन्तर ध्यान लगा, रखने से हमारा देश कब मुक्त होगा? अच्छा, अपने मत में थोड़ी कट्टरता भी आवश्यक है। परन्तु दूसरों की ओर हमें विरोध-भाव नहीं रखना चाहिये।

यदि तुम मेरे विचारों पर चलना विवेक युक्त समझो, और यदि तुम इन नियमों का पालन करो, तो मैं तुम्हें पर्याप्त धन देता रहूँगा। .... कृपया यह पत्र गौरी माँ, योगेन माँ आदि को दिखा देना और उनके द्वारा स्त्रियों का मठ स्थापित करना। एक वर्ष के लिए गौरी माँ को उसका अध्यक्ष बनने दो।.........परन्तु तुममें से किसी को वहाँ नहीं जाना चाहिये। वे अपना कार्य स्वयं संभालें। तुम्हारे आदेश पर उन्हें काम नहीं करना है। मैं उस काम के लिए भी आवश्यक धन दूँगा।

भगवान् तुम्हें उचित राह पर चलाएँ! दो व्यक्ति भगवान जगन्नाथ के दर्शन को गए। एक ने तो वहाँ जाकर भगवान को ही देखा, परन्तु दूसरे ने वह देखा जो गंदगी उसके मन में व्याप्त थी।

मेरे मित्रो, निस्सन्देह ही गुरुदेव की सेवा अनेकों ने की, परन्तु जब किसी के मन में अपने को असाधारण व्यक्ति समझने का भाव जाग्रत हो, तब उसे यह समझना चाहिये कि यद्यपि उसने श्रीरामकृष्ण का सत्संग किया है, तथापि सच बात तो यह है कि उसने अपने मन की वाहियात बातें ही उनमें देखीं। यदि ऐसा न होता तो वह कुछ अच्छे परिणाम दिखाता। गुरुदेव स्वयं हमेशा कहते थे, "वे भगवान के नाम में नाचते और गाते थे परन्तु अन्त उनका दुःखदायी होता था।" इस अधोगति का मूल अहंकार है—यह सोचना कि हम दूसरों के समान महापुरुष हैं। कोई कहेगा, "वे (गुरुदेव) मुझसे भी प्रेम करते थे।' हाय, घसीटा राम, तब क्या तुम्हारा ऐसा रूपान्तर होता? क्या ऐसा मनुष्य दूसरे से डाह करता या लड़ता और अपने आप को गिरा देता? यह याद रखो कि उनकी कृपा से बहुत से आदमी देवताओं की महिमा प्राप्त करेंगे—जहाँ कहीं उनकी कृपादृष्टि पड़ेगी वहाँ यही परिणाम दिखाई देगा....आज्ञापालन पहला धर्म है। अब जो मैं तुमसे कहता हूँ उसे उत्साह पूर्वक करो। मैं देखूँ कि यह थोड़े से छोटे-छोटे काम तुम कैसे करते हो। फिर धीरे-धीरे बड़े काम होंगे।

तुम्हारा, विवेकानन्द

पु०—कृपा करके यह पत्र सब को पढ़कर सुना दो, और मुझे लिखो कि यह प्रस्ताव व्यवहार में लाना तुम उचित समझते हो या नहीं। कृपा करके राखाल से कहना कि जो सब का दास होता है वही उनका सच्चा स्वामी होता है। जिसके प्रेम में ऊँच नीच का विचार होता है वह कभी नेता नहीं बन सकता। जिसके प्रेम का कोई अन्त नहीं है, जो ऊँच नीच सोचने के लिए कभी नहीं रुकता उसके चरणों में सारा संसार लोट लगाता है—वि०।

(कुमारी मेरी हेल को)

६३ सेन्ट जॉर्जेज रोड,
लन्दन, एस० डब्ल्यू०
३० मई १८९६

प्रिय मेरी,

.........परसों आचार्य मैक्स मुलर से मेरी अत्यन्त सन्तोषप्रद भेंट हुई। वे एक साधु पुरुष हैं, और सत्तर वर्ष की आयु होने पर भी नव युवक से लगते हैं, और उनके मुख पर झुर्रियों का नाम भी नहीं है। भारत और वेदान्त के लिए जो उन्हें प्रेम है उसका अर्धांश पाने के लिए मैं इच्छुक हूँ। इसके साथ ही वे योग के भी मित्र हैं और उसमें विश्वास भी रखते हैं। केवल वे पाखंडियों को सहन नहीं कर सकते।

इससे अधिक, श्रीरामकृष्ण परमहंस उन्हें अत्यन्त पूजनीय हैं, और उन्होंने उनके विषय में "नाइनटीन्थ सेन्चुरी" में एक लेख भी लिखा है। उन्होंने मुझसे प्रश्न किया "संसार को उनके सम्बन्ध में ज्ञान करा देने के लिए तुम क्या कर रहे हो?" वर्षों से श्रीरामकृष्ण ने उन्हें मुग्ध किया है। क्या यह शुभ समाचार नहीं है?...

यहाँ काम धीरे-धीरे परन्तु दृढ़ता से हो रहा है। आगामी रविवार से मैं व्याख्यान देना आरम्भ करूँगा।

कृतज्ञता पूर्वक प्रेम से सदैव आपका—विवेकानन्द

(भगिनी निवेदिता को)

६३ सेंट जॉर्जिज़ रोड, लन्दन,
७ जून १८९६

प्रिय कुमारी नोबल,

मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े से शब्दों में कहा जा सकता है, और वह है—मनुष्य-जाति को उसके दैवत्व का उपदेश देना, तथा जीवन के प्रत्येक अंग में उसे प्रकट करने का उपाय बताना।

यह संसार कुसंस्कारों की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। जो अत्याचार से दबे हुए हैं, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, मैं उन पर दया करता हूँ, परन्तु अत्याचारियों पर मेरी दया अधिक है।

एक विचार जो मैं सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट देखता हूँ वह यह है कि अज्ञान ही दुःख का कारण है और कुछ नहीं। जगत् को प्रकाश कौन देगा? भूतकाल में बलिदान का नियम था, और दुःख है कि युगों तक ऐसा ही रहेगा। संसार के वीरों को और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों 'बुद्धों' की आवश्यकता है।

संसार के धर्म प्राणहीन और तिरस्कृत होगए हैं। जगत् को जिस वस्तु की आवश्यकता है वह चरित्र है। संसार को ऐसे लोग चाहिये जिनका जीवन स्वार्थहीन ज्वलन्त प्रेम का उदाहरण हो। वह प्रेम एक-एक शब्द को वज्र के समान प्रभावशाली बना देगा।

मेरी दृढ़ धारणा है कि तुममें कुसंस्कार नहीं है। तुममें वह शक्ति विद्यमान है जो संसार को हिला सकती है, और अन्य लोग भी आयेंगे। 'वीर' शब्द और उससे अधिक वीर कर्मों की हमें आवश्यकता है। महामना, उठो! उठो! संसार दुःख से जल रहा है। क्या आप सो सकती हैं? हमें बार-बार बुलाने दो जब तक सोते हुए देवता जाग न उठें, जब तक अन्तर्यामी देव उस पुकार का उत्तर न दें। जीवन में और क्या है? इससे महान् कर्म क्या है? चलते-चलते मुझे भेद प्रभेद सहित सब बातें ज्ञात हो जाती हैं। मैं उपाय कभी नहीं सोचता। कार्य-संकल्प का अभ्युदय स्वतः होता है और वह

निज बल से ही पुष्ट होता है। मैं केवल कहता हूँ, जागो, जागो! सब तरह का आशीर्वाद तुम्हारे संग सर्वदा रहे!

सस्नेह तुम्हारा, विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

स्विट्जरलैण्ड
८ अगस्त १८९६

प्रिय आलासिंगा,

कई बातों की आवश्यकता है। पहले तो पूर्ण ईमानदारी होनी चाहिये। यह कहने से मेरा यह आशय नहीं है कि तुम उससे तनिक भी विचलित हो सकते हो; परन्तु रोज़गार में हिन्दुओं में एक विचित्र फूहड़पन होता है; कारण यह कि वे हिसाब ठीक ठीक पद्धति के अनुसार तथा सावधानी से नहीं रखते।

दूसरे, अपने कार्य के निमित्त पूर्ण निष्ठा होनी चाहिये—यह जानकर कि 'ब्रह्मवादिन' की सफलता से ही तुम्हें मुक्ति प्राप्त होगी। इस पत्रिका को अपना इष्ट देवता बना लो और तब देखो कि कैसी सिद्धि तुम्हें मिलती है। मैंने अभेदानन्द को भारत से बुला लिया है ....याद रखो कि पूर्ण पवित्रता और गुरु का स्वार्थरहित आज्ञापालन ही सिद्धि का रहस्य है।........

धार्मिक पत्रिका का विदेश में अधिक संख्या से प्रचलन होना असम्भव है। यदि हिन्दुओं में लेश मात्र भी कुछ सद्गुण और कृतज्ञता रह गए हैं, तो उन्हीं को उस पत्रिका को सँभालना होगा।

वेदान्त का उपदेश देने के अतिरिक्त इस पत्रिका का आदर्श होना चाहिये धार्मिक विषयों में अनुसन्धान। विद्वत्ता का भी पूरा परिचय इससे मिलना चाहिये।

श्रीमती ऐनी-बेसेन्ट ने मुझे अपने लॉज में 'भक्ति' विषय पर व्याख्यान देने को बुलाया था। एक दिन रात को मैंने वहाँ भाषण दिया। कर्नल अलकॉट भी वहाँ थे। सब सम्प्रदायों के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति दर्शाने के लिये मैंने यह भाषण दिया।........ हमारे देशवासियों को याद रखना चाहिये कि आत्मा-सम्बन्धी विषयों में हम गुरु हैं, अनभिज्ञ नहीं हैं,—परन्तु लौकिक विषयों का ज्ञान हमें विदेशियों से सीखना चाहिये।

मैंने मैक्स मुलर का लेख पढ़ा। यह विचार मन में रखते हुए कि उन्होंने छः महीने हुए इसे लिखा था जब कि मजुमदार की लघु पत्रिका को छोड़कर उनके पास और कुछ सामग्री न थी, वह लेख अच्छा है।

अब उन्होंने मुझे एक अच्छा सा पत्र भेजा है, जिसमें श्रीरामकृष्ण की जीवनी लिखने का प्रस्ताव किया है। मैंने अब भी उन्हें बहुत कुछ सामग्री दे दी है; परन्तु भारत से और आने की आवश्यकता है।

काम करो! तत्पर रहो! साहसी होओ! किसी चीज से न डरो!........तुम देखते नहीं, यह संसार सब दुःखमय है।

आशीर्वाद और प्रेम के साथ तुम्हारा,

विवेकानन्द

(जे० जे० गुडविन को)

स्वित्ज़रलैण्ड

८ अगस्त १८९६

मैं अब विश्राम कर रहा हूँ। भिन्न-भिन्न पत्रों से मैं कृपानन्द के विषय में बहुत कुछ पढ़ता हूँ। मुझे उसके लिये दुःख होता है। उसके मस्तिष्क में कुछ दोष होगा। उसे अकेला छोड़ दो। तुममें से किसी को भी उसके लिए कष्ट उठाने की कोई आवश्यकता नहीं।

मुझे आघात पहुँचाने की देव या दानव किसी की भी शक्ति नहीं है। इसलिए निश्चिन्त रहो। अचल प्रेम और पूर्ण निस्स्वार्थ सब चीज़ों पर विजय पाता है। प्रत्येक कठिनाई के आने पर हम वेदान्तियों को स्वतः यह प्रश्न करना चाहिये "मैं इसे क्यों देखता हूँ?" "प्रेम से मैं क्यों नहीं इस पर विजय पा सकता हूँ?"

स्वामी की अगवानी से मैं अति प्रसन्न हूँ और जो वह अच्छा काम कर रहा है उससे भी। बड़े काम में बहुत समय तक लगातार और असामान्य प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। यदि थोड़े से व्यक्ति असफल भी हो जायँ तो भी उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिये। संसार में यह नियम ही है कि अनेकों नीचे गिरते हैं, कितने ही दुःख आते हैं तथा कितनी ही भयंकर कठिनाइयाँ सामने उपस्थित होती हैं एवं स्वार्थपरता तथा अन्य बुराइयों के साथ

हृदय में घोर संघर्ष होता है जब कि आध्यात्मिकता की प्रज्वलित अग्नि की आंच से इन सभों का विनाश होनेवाला होता है। इस जगत् में श्रेय का मार्ग सब से दुर्गम और पथरीला है। यह आश्चर्य की बात है कि इतने लोग सफलता प्राप्त करते हैं, कितने लोग असफल होते हैं यह आश्चर्य नहीं। सहस्रों ठोकरें खाकर चरित्र का संगठन होता है।

मुझे अब बहुत ताजगी माळूम होती है। मैं खिड़की से बाहर दृष्टि डालता हूँ और मुझे बड़ी-बड़ी हिम-नदियाँ दिखती हैं और मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं हिमालय में हूँ। मैं बिलकुल-शान्त हूँ। मेरे स्नायुओं ने अपनी पुरानी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली है, और मन को उद्विग्न करनेवाले छोटे-मोटे क्लेश जैसे कि तुमने लिखे हैं मुझे स्पर्श भी नहीं करते। यह सब संसार बालकों का खेल मात्र है उससे मैं कैसे विचलित हो सकता हूँ? प्रचार करना, शिक्षा देना सभी कुछ बच्चों का खेल है। "उसे संन्यासी समझो जो न द्वेष करता है, न इच्छा करता है।" और इस संसार की छोटी सी कीचड़ भरी तलैया में, जहाँ दुःख, रोग तथा मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है, वहाँ क्या है जिसकी इच्छा की जा सके! "जिसने सब इच्छाओं को त्याग दिया है वही एक सुखी है।"

यह विश्राम, नित्य और शान्तिमय विश्राम, इस रमणीक स्थान में उसकी झलक मुझे मिल रही है। "एक बार यह जानकर कि इस आत्मा का केवल अस्तित्व है और किसी का नहीं, किस

चीज़ की, या किसके लिए इच्छा करके तुम इस शरीर का दुःख उठाओगे ?"

मुझे ऐसा विदित होता है कि जिसको वे लोग "कर्म" कहते हैं उसका मेरा अपना हिस्सा अब पूरा हो चुका है। अब निकलने की मुझे उत्कट अभिलाषा है। "सहस्रों में से कोई एक लक्ष्य को प्राप्त करने का यत्न करता है। और जो परम उद्योगी भी होते हैं उनमें से थोड़े ही ध्येय तक पहुँचते हैं; क्योंकि इन्द्रियाँ बलवती हैं और वे मनुष्य को नीचे की ओर खींचती हैं।"

"साधु संसार" "सुखी जगत" और "सामाजिक उन्नति" ये सब "उष्ण बरफ़" और "अन्धकारमय प्रकाश" के समान ही हैं। यदि संसार साधु होता तो वह संसार ही न होता। जीव मूर्खतावश असीम अनन्त को सीमित भौतिक पदार्थ द्वारा अभिव्यक्त करना चाहता है, और चैतन्य को जड़ द्वारा; परन्तु अन्त में अपने भ्रम को समझ कर वह उससे छुटकारा पाने की चेष्टा करता है। यह निवृत्ति ही धर्म का प्रारम्भ है और उसका उपाय है ममत्व का नाश अर्थात् प्रेम। स्त्री, सन्तान या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम नहीं परन्तु इस छोटे से ममत्व को छोड़कर सबके लिए प्रेम। वह "मानवी उन्नति" और इसके समान जो लम्बी-चौड़ी बातें तुम अमेरिका में बहुत सुनोगे उनसे कभी ठगे मत जाना। सभी दिशाओं में सांसारिक 'उन्नति' कभी नहीं हो सकती, उसके साथ साथ कहीं न कहीं अवनति होगी ही। एक समाज में एक प्रकार के

दोष हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के। इसी तरह इतिहास के विशिष्ट कालों में। मध्य काल (Middle-Age) में चोर-डाकू अधिक थे, अब छल कपट करने वाले अधिक हैं। एक विशिष्ट-काल में वैवाहिक जीवन का विचार कम होता है, दूसरे में वेश्यागमन अधिक होता है। एक में ज्यादा शारीरिक कष्ट, दूसरे में हजार-बार ज्यादा मानसिक सन्ताप। इसी प्रकार ज्ञान भी। क्या प्रकृति में केन्द्र की आकर्षण शक्ति (Gravitation) का निरीक्षण और नाम रखने से पहले अस्तित्व ही न था? फिर उसके जानने से क्या अन्तर पड़ा? क्या तुम रेड इण्डियन (उत्तर अमेरिका के प्राचीन निवासियों) से अधिक सुखी हो?

वह एक ज्ञान जिसका कोई मूल्य है वह यही जानना है कि यह सब व्यर्थ है। परन्तु थोड़े, बहुत थोड़े ही कभी इसे जान पायेंगे। "एक आत्मा को ही जानो और सब वृथा शब्दों को त्यागो।" इस संसार में ठोकरें खाने से इस एक ज्ञान की ही हमें प्राप्ति होती है। मनुष्य-जाति को पुकारना कि "जागो, उठो, और ध्येय की उपलब्धि के बिना रुको नहीं"—यही केवल एक कर्म है। त्याग ही धर्म का सार है और कुछ नहीं।

जिस प्रकार मानवी शरीर एक व्यक्ति है और उसका प्रत्येक सूक्ष्म भाग जिसे हम 'कोश' (Cell) कहते हैं एक एक अंश है उसी प्रकार सारे व्यक्तियों की समष्टि ईश्वर है, यद्यपि वह स्वयं भी एक व्यक्ति है। समष्टि ही ईश्वर है, व्यष्टि या अङ्ग जीव है। इसलिए

ईश्वर का अस्तित्व जीवों के अस्तित्व पर निर्भर है जैसे कि शरीर का उसके सूक्ष्म-भाग पर और सूक्ष्म-भाग का शरीर पर। इस प्रकार, जीव और ईश्वर परस्परावलम्बी हैं। जब तक एक का अस्तित्व है दूसरे का भी रहेगा। और हमारी इस पृथ्वी को छोड़कर अन्य सब ऊँचे लोकों में शुभ की मात्रा अशुभ से अत्यधिक होती है इसलिए वह ईश्वर शिवस्वरूप सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ कहा जा सकता है। ये गुण प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं। ईश्वर से सम्बद्ध होने के कारण, प्रमाण के लिए तर्क की आवश्यकता नहीं रहती।

ब्रह्म इन दोनों से परे है और वह कोई विशिष्ट अवस्था नहीं है। वह एक ऐसी वस्तु है जो अनेकों की समष्टि से नहीं बनी है। वह ऐसी एक सत्ता है जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म से लेकर ईश्वर तक सब में व्याप्त है और उसके बिना किसी का अस्तित्व नहीं हो सकता। सभी का अस्तित्व उसी सत्ता या ब्रह्म का प्रकाश मात्र है। जब मैं सोचता हूँ "मैं ब्रह्मन् हूँ" तभी मेरा यथार्थ अस्तित्व होता है। ऐसा ही सब के बारे में है। विश्व की प्रत्येक वस्तु उसी सत्ता का पूर्ण रूप है।

कुछ दिन हुए कृपानन्द को लिखने की मुझे अकस्मात् और प्रबल इच्छा हुई। शायद वह दुःखी था और मुझे याद करता होगा। इसलिए मैंने उसे सहानुभूति-पूर्ण पत्र लिखा। आज अमेरिकन समाचार से मेरे समझ में आया कि ऐसा क्यों हुआ। हिम-नदियों के पास से तोड़े हुए पुष्प मैंने उसे भेजे। श्रीमती वालडो से कहना

कि कुछ धन और बहुत सा प्रेम उसे भेज दें। प्रेम का कभी नाश नहीं होता। पिता का प्रेम अमर है, सन्तान चाहे जो करें या जैसे भी हों। वह मेरा पुत्र है। अब वह दुःख में है इसलिए उसे समान या अपने भाग से अधिक मेरा प्रेम व सहायता मिलेगी।

आशीर्वाद पूर्वक तुम्हारा, विवेकानन्द

लेक ल्यूसर्न, स्विट्‌ज़रलैंड
२३ अगस्त १८९६

प्रिय,—

आज रामदयाल बाबू का पत्र मुझे मिला जिसमें वे लिखते हैं कि दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के वार्षिकोत्सव के दिन बहुत सी वेश्याएँ वहाँ आई थीं, इसलिए बहुत से लोगों को वहाँ जाने की इच्छा कम हो गई है। इसके अतिरिक्त उनके विचार से पुरुषों के जाने के लिए एक दिन नियुक्त होना चाहिये और स्त्रियों के लिए दूसरा। इस विषय पर मेरा निर्णय यह है —

१. यदि वेश्याओं को दक्षिणेश्वर जैसे महान् तीर्थों में आने जाने की आज्ञा नहीं होगी तब वे और कहाँ जा सकेंगी? ईश्वर पापियों के लिए विशेषतः प्रकट होते हैं, पुण्यवानों के लिए कम।

२. लिंग, जाति, धन, और विद्या के भेद और इनके समान जो और भी बहुत से हैं जो कि साक्षात् नरक के द्वार हैं, उन्हें

संसार में ही सीमाबद्ध रहने दो। यदि तीर्थों के पवित्र स्थानों में यह भेद दृढ़ता से बने रहेंगे तो उनमें और नरक में क्या अन्तर रह जायगा?

३. हमारी एक विशाल जगन्नाथपुरी है जहाँ जिन्होंने पाप किए हैं और जिन्होंने नहीं किए हैं, महात्मा और दुरात्मा,—पुरुष, स्त्री और बालक—बिना किसी उम्र अथवा अवस्था के भेदभाव के—सब को समान अधिकार है। वर्ष में कमसे कम एक दिन के लिए सहस्रों स्त्री, पुरुष पाप और भेद-भाव से छुटकारा पाते हैं, और परमात्मा का नाम सुनते और गाते हैं यह स्वयं परम श्रेय है।

४. यदि तीर्थ-स्थान में भी लोगों की पापप्रवृत्ति में एक दिन के लिए भी बाधा नहीं पड़ सकती, तब समझो कि दोष तुम्हारा है; उनका नहीं। आध्यात्मिकता की एक ऐसी शक्तिशाली लहर उठा दो कि उसके समीप जो कोई भी लोग आ जायँ वे उसमें बह जायँ।

५. जो मन्दिर में भी यह सोचते हैं कि यह वेश्या है, यह मनुष्य नीच जाति का है, एक तीसरा दरिद्र है, तथा कोई और साधारण जनता में से है—ऐसे लोगों कि संख्या (जिन्हें तुम सज्जन कहते हो) जितनी कम हो उतना ही अच्छा। क्या जो लोग भक्तों की जाति, लिंग या जीवन का व्यवसाय देखते हैं वे हमारे प्रभु के गुण ग्रहण कर सकेंगे? मैं प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि सैकड़ों

वेश्याएँ आएँ, और उनके चरणों में अपना सिर नवाएँ, और यदि एक भी सज्जन न आए तो भी कोई हानि नहीं। आओ वेश्याओं, आओ शराबियों, आओ चोरों, सब आओ, श्रीप्रभु का द्वार सब के लिए खुला है। "धनवान का ईश्वर के राज्य में प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई के छिद्र में घुसना सहज है।" कभी ऐसे क्रूर और राक्षसी भावों को अपने मन में न आने दो।

६. परन्तु कुछ सामाजिक सावधानी की आवश्यकता है—हम यह कैसे कर सकते हैं? कुछ मनुष्य (यदि वृद्ध हों तो अच्छा हो) पहरेदारी का भार दिन भर के लिए ले लें। वे उत्सव के स्थान में परिभ्रमण करेंगे, और यदि पुरुष और स्त्री की बातचीत या आचरण में अशिष्ट व्यवहार पायेंगे तो वे उन्हें तुरन्त ही उद्यान में से निकाल देंगे। परन्तु जब तक शिष्ट स्त्री-पुरुषों के समान उनका आचरण रहे, तब तक वे भक्त हैं और आदरणीय हैं—चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, सच्चरित्र या दुश्चरित्र।

मैं इस समय स्विट्‌ज़रलैंड में भ्रमण कर रहा हूँ, और आचार्य डायसन से भेंट करने शीघ्र ही जर्मनी जाने वाला हूँ। वहाँ से मैं २३ या २४ सितम्बर तक इङ्गलैंड लौट कर आऊँगा और आगामी हेमन्त ऋतु तक तुम मुझे अपने देश में लौटा हुआ पाओगे। तुम्हें और सबको मेरा प्रेम। तुम्हारा—विवेकानन्द

(डा. नान्जुन्दा राव एम. डी. को)

स्विट्ज़रलैण्ड
२६ अगस्त १८९६

प्रिय नान्जुन्दा राव,

मुझे तुम्हारा पत्र अभी मिला। मैं बराबर घूम रहा हूँ। मैं आल्प्स पर्वतों में बहुत से पहाड़ों पर चढ़ा और कई हिम-नदियों को पार किया। अब मैं जर्मनी जा रहा हूँ। प्रोफेसर डायसन ने मुझे कील आने का निमन्त्रण दिया है। वहाँ से मैं इङ्गलैण्ड जाऊँगा। सम्भव है कि इसी सर्दी में मैं भारत लौट आऊँ।

मैंने चित्र की रूपरेखा का विरोध किया, वह इसलिए कि उसमें मैंने एक बेढब भड़कीलापन और बिना प्रयोजन अनेक मूर्तियों की भीड़ पाई। चित्र सरल, सूचक एवं संक्षिप्त होना चाहिये....

मुझे बड़ा हर्ष है कि काम अति सुन्दर रूप से चल रहा है। ....परन्तु मैं तुम्हें एक सलाह दूँगा। भारत में जो काम साझे में होता है वह एक दोष के बोझ से डूब जाता है। दोष यह है कि हममें अभी तक कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में नियमों की कट्टरता नहीं आई है। कार्य कार्य ही है, उसमें मित्रता या जैसी कि हिन्दू कहावत है 'मुँहदेखी' न आनी चाहिये। अपने जिम्मे जो हिसाब-किताब हो, वह बहुत ही सफाई से रखना चाहिये और कभी एक कोष का धन किसी दूसरे काम में न लाना चाहिये, चाहे दूसरे क्षण

भूखे ही क्यों न रहना पड़े। यही है कार्य की सचाई। इसके बाद दूसरी बात यह है कि कार्य करने की अटूट शक्ति होनी चाहिये। जो कुछ तुम करते हो, उस समय के लिए उसे अपनी पूजा समझो। इस समय इस पत्रिका को अपना ईश्वर बना लो और तुम्हें सफलता प्राप्त होगी।

जब तुम इस पत्र के संचालन में सिद्धिलाभ करोगे, तब इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में—तामिल, तेलगू और कन्नड़ आदि में—भी पत्रिकाएँ शुरू करो। मद्रासी गुणवान हैं, पुरुषार्थी हैं, यह सब कुछ है; परन्तु ऐसा मालूम होता है कि शंकराचार्य के प्रान्त ने त्याग का भाव खो दिया है।

मेरे बच्चों को छिद्र और दरारों में घुस पड़ना होगा, संसार त्यागना होगा—तब दृढ़ नींव पड़ेगी।

वीरता से आगे बढ़ो। चित्र की रूपरेखा और छोटी-छोटी बातों पर अभी ध्यान न दो—"घोड़े के संग लगाम भी मिल जायगी।" मृत्यु-पर्यन्त काम करो—मैं तुम्हारे साथ हूँ, और जब मैं न रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे संग काम करेगी। यह जीवन आता और जाता है—नाम, यश, भोग यह सब थोड़े दिन के हैं। संसारी कीड़े की तरह मरने से अच्छा है—कहीं अच्छा है—कि कर्तव्य के क्षेत्र में सत्य का उपदेश देते हुए मरो। आगे बढ़ो।

प्रेम और आशीर्वाद के साथ तुम्हारा

विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

मार्फत कुमारी मुलर
एयर्ली लॉज, रिजवे गार्डेन्स
विम्बलडन, इङ्गलैण्ड
२२ सितम्बर १८९६

प्रिय आलासिंगा,

....जर्मनी में प्रोफेसर डायसन के संग मैंने बड़े आनन्द का समय विताया। उसके वाद वे और मैं दोनों साथ ही लन्दन आए और अव वे मेरे परम मित्र वन गए हैं।

....गंभीर लेख-लेखन के सम्वन्ध में अभी भी एक वहुत वडा क्षेत्र पड़ा हुआ है जो छुआ तक नहीं गया है; और वह है तुलसीदास, कवीर, नानक तथा दक्षिण भारत के महात्माओं के जीवन-चरित्र। और ये जीवन-चरित्र अच्छे प्रकार, विद्वत्तापूर्ण ढंग से लिखे जाने चाहिये, न कि ऐसे ही मामूली तौर से अव्यवस्थित रूप में।

....सम्पूर्ण शक्ति से काम करो। सव को प्यार।

तुम्हारा
विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

मार्फत ई. टी. स्टर्डी
३९ विक्टोरिया स्ट्रीट, लन्दन,
२८ अक्तूबर १८९६

प्रिय आलासिंगा,

........मैं अभी तक यह ठीक-ठीक नहीं बता सकता हूँ कि किस महीने में मैं भारत पहुचूँगा। इसके बारे में मैं फिर लिखूँगा। नए स्वामी ने कल एक मित्र-मण्डली में अपना पहला व्याख्यान दिया। भाषण अच्छा था, और मुझे पसन्द आया, उसमें सुवक्ता बनने के लक्षण हैं, यह मुझे विश्वास है।

........तुमने अभी तक 'कर्मयोग' पुस्तक नहीं छपवाई। दूसरी बात यह कि भारत में ज्यादा बिक्री होने के लिए पुस्तकों को सस्ता होना चाहिये, जनता को संतुष्ट करने के लिए अक्षरों का आकार भी बड़ा होना चाहिये........तुम आसानी से 'राजयोग' का एक सस्ता संस्करण निकाल सकते हो। जानबूझकर मैंने उसका कापीराइट अपने पास नहीं रखा है। उसे पहले न छपवा कर तुमने एक सुअवसर खो दिया; परन्तु हम हिन्दू लोग सुस्त हैं। जब तक हमारा काम पूरा होता है, अवसर हाथ से निकल जाता है और इस तरह हम हानि उठाते हैं। तुम्हारी 'भक्तियोग' किताब सालभर सिर्फ बातें करने के बाद प्रकाशित हुई। तुम क्या समझते थे कि पश्चिमी लोग महाप्रलय के दिन तक उसकी बाट जोहेंगे? तुमने इस विलम्ब से तीन चौथाई बिक्री हाथ से खो दी।........वह

हरमोहन मूर्ख है, तुमसे भी वह सुस्त है और उसकी छपाई तो महा निकृष्ट है। इस तरह से किताबों को प्रकाशित करने से कुछ लाभ नहीं; यह जनता को ठगना है और ऐसा करना अनुचित है। भारत लौटते समय मेरे संग मि० और मिसेज़ सेवियर, मिस मुलर और मि० गुडविन भी आयेंगे। सम्भव है कि मि० और मिसेज़ सेवियर अलमोड़े में अपना निवास-स्थान बनाएँ, कमसे कम कुछ समय के लिए, और गुडविन संन्यासी बनने वाला है। वह मेरे संग ही यात्रा करेगा। हम अपनी सब पुस्तकों के लिए उसी के ऋणी हैं। उसने मेरे व्याख्यानों के संक्षिप्त अक्षरों में स्मरण-लेख (Shorthand notes) लिखे थे, जिसके कारण पुस्तकें प्रकाशित हो सकीं। ये सब व्याख्यान उसी क्षण बिना किसी तैय्यारी के दिए गए थे। गुडविन को मेरे संग रहना पड़ेगा। वह कट्टर शाकाहारी है।

प्रेम पूर्वक तुम्हारा,
विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को)

१४ ग्रेकोट गार्डन्स
वेस्ट मिन्सटर, लन्दन
१ नवम्बर १८९६

प्रिय मेरी—

"सोना और चांदी" मेरे पास किंचित् मात्र नहीं हैं, किन्तु जो मेरे पास है वह मैं तुम्हें मुक्त हस्त देने को तैयार हूँ। आर

वह यह ज्ञान है कि स्वर्ण का स्वर्णत्व, रजत का रजतत्व, पुरुष का पुरुषत्व, स्त्री का स्त्रीत्व, और सब वस्तुओं का सत्य स्वरूप परमात्मा ही है, और इस परमात्मा को प्राप्त करने के लिए वाह्य जगत् में हम अनादि काल से प्रयत्न करते आ रहे हैं, और इस यत्न में हम अपनी कल्पना की वस्तुओं को भी—जैसे कि पुरुष, स्त्री, बालक, शरीर, मन, पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, तारे, संसार, प्रेम, द्वेष, धन, सम्पत्ति इत्यादि; और भूत, राक्षस, देवदूत, देवता ईश्वर इत्यादि—त्याग रहे हैं।

सच तो यह है कि प्रभु हममें ही हैं, हम स्वयं प्रभु हैं—जो नित्य साक्षी, सच्चे 'अहम्' तथा अतीन्द्रिय हैं। उन्हें द्वैत मात्र से देखने की प्रवृत्ति तो केवल समय और बुद्धि को नष्ट करना ही है। जब जीव को यह ज्ञान हो जाता है तब वह विषयों का आश्रय लेना छोड़ देता है और अन्तरात्मा की ओर अधिकाधिक प्रवृत्त होता है। यही क्रम-विकास है अर्थात् अन्तर्दृष्टि का अधिकाधिक विकास एवं बहिर्दृष्टि का अधिकाधिक लोप। धर्म-शास्त्र में इसे 'त्याग' कहते हैं। समाज का निर्माण, विवाह की व्यवस्था, सन्तान का प्रेम, हमारे शुभ कर्म, शुद्धाचरण और नीतिशास्त्र ये सब त्याग के भिन्न भिन्न रूप हैं। सब समाजों में, लोगों का जीवन, संकल्प, वासना तथा भूख-प्यास के दमन में ही निहित है।

इस स्वार्थ अथवा मिथ्या अहं के दमन, तथा एकमेवाद्वितीयम् नित्य साक्षीस्वरूप आत्मा को द्वैत भाव से देखने के प्रयत्न के निग्रह के भिन्न भिन्न स्तर तथा उनकी अवस्थाएँ ही संसार के भिन्न भिन्न

समाज एवं सामाजिक नियम हैं। आत्म-समर्पण तथा स्वार्थनिग्रह का सब से सरल उपाय है प्रेम, तथा इसका विपरीत उपाय है द्वेष।

अनेक कथाएँ, स्वर्ग-नरक, तथा आकाश के परे राज्य करने वाले शासकों के बारे में कुसंस्कार—आदि के द्वारा मनुष्य को भुलावे में डालकर उसे आत्म-समर्पण के इस लक्ष्य की ओर अग्रसर किया जाता है। इन सब कुसंस्कारों के बिना, तत्वज्ञानी केवल वासना के त्याग द्वारा ही जान-बूझ कर इस लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते हैं।

बाह्य स्वर्ग या राम-राज्य का अस्तित्व केवल कल्पना में ही है, परन्तु मनुष्य के भीतर इनका अस्तित्व पहले से ही है। कस्तूरी की सुगन्ध की व्यर्थ खोज करने के बाद, कस्तूरी-मृग अन्त में उसे अपने में ही पाता है।

बाह्य समाज सर्वदा शुभ और अशुभ का सम्मिश्रण होगा—बाह्य जीवन की अनुगामी उसकी छाया अर्थात् मृत्यु, सर्वदा उसके संग रहेगी, और जीवन जितना लम्बा होगा उसकी छाया भी उतनी ही लम्बी होगी। केवल जब सूर्य हमारे सिर पर होता है तब कोई छाया नहीं होती। जब ईश्वर, भलाई और अन्य सब कुछ हममें ही हैं तो अशुभ कहाँ? परन्तु बाह्य जीवन में प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और हर शुभ के संग अशुभ उसकी छाया की तरह जाता है। उन्नति में अधोगति का समान अंश रहता है, कारण यह है कि अशुभ और शुभ एक ही पदार्थ हैं, दो नहीं; भेद अभिव्यक्ति में है—मात्रा में, न कि जाति में।

हमारा जीवन स्वयं दूसरों की मृत्यु पर अवलम्बित है, चाहे वनस्पतियाँ हों, चाहे पशु, चाहे कीटाणु। एक बड़ी भारी भूल जो हम लोग बहुधा करते हैं वह यह कि शुभ को हम सदा बढ़ने वाली वस्तु समझते हैं और अशुभ को एक निश्चित राशि मानते हैं। इससे हम तर्क द्वारा सिद्ध करते हैं कि यदि अशुभ दिन-दिन घट रहा है तो एक समय ऐसा आएगा जब शुभ ही अकेला शेष रह जायगा। मिथ्या पूर्वपक्ष की स्वीकृति से हमारा तर्क अशुद्ध हो जाता है। यदि शुभ की मात्रा बढ़ रही है तो अशुभ की भी। मेरी जाति की जनता की अपेक्षा मेरी इच्छाएँ बहुत बढ़ गई हैं। मेरा सुख उनसे अत्यधिक है—परन्तु मेरा दुःख भी उनसे लाखों बार तीव्र है। जिस स्वभाव के कारण तुम्हें शुभ के स्पर्श-मात्र का आभास होता है उसी से तुम्हें अशुभ के स्पर्श-मात्र का भी आभास होगा। जिन स्नायुओं द्वारा सुख का अनुभव होता है उन्हींके द्वारा दुःख का भी; और एक ही मन दोनों का अनुभव करता है। संसार की उन्नति का अर्थ है सुख की अधिक मात्रा और दुःख की भी। जीवन और मृत्यु, शुभ और अशुभ, ज्ञान और अज्ञान का सम्मिश्रण—यही 'माया' कहलाती है—यही है विश्व का नियम। तुम अनन्त काल तक इस जाल में सुख और दुःख की खोज करोगे—तुम्हें बहुत सुख और बहुत दुःख दोनों मिलेंगे। यह कहना कि संसार में केवल शुभ ही हो, अशुभ नहीं, बालकों का प्रलाप मात्र है।

दो मार्ग हमें खुले मिलते हैं—एक तो सब प्रकार की आशा को छोड़कर संसार जैसा है वैसा स्वीकार करके, दुःख की वेदना को

........अब एक अंग्रेज़ी भाषा में भारतीय पत्रिका नियत हो गई है। अब भारतीय भाषाओं में हम कुछ आरम्भ कर सकते हैं........इस तरह की पत्रिकाओं को हमारे शिष्यों द्वारा सहायता मिलेगी ....भारतीय पत्रों की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिये। किसी पत्र को सब राष्ट्रों में समान भाव से अपनाने के लिये, सब राष्ट्रों के लेखकों का एक बड़ा भारी विभाग रखना पड़ेगा, जिसके माने हैं प्रतिवर्ष एक लाख रुपये का खर्च।

....तुम्हें यह न भूलना चाहिये कि मेरे कार्य आन्तर्राष्ट्रीय हैं और 'केवल भारतीय' नहीं........

विम्ब्लेडन की मिस एम० नोबल बड़ी काम करने वाली है....

परम प्रेम और आशीर्वाद सहित

तुम्हारा, विवेकानन्द

(एक अमेरिकन महिला को)

लन्दन,

१३ दिसम्बर १८९६

श्रीमती जी,

नीति के क्रमविकास को ग्रहण करने से सब चीज़ें समझ में आने लगती हैं।

त्याग—अप्रतिकार—अहिंसा ये आदर्श हैं, जो कि क्रम से घटती हुई सांसारिकता, प्रतिकार और हिंसा के द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। आदर्श सामने रखो और उसकी ओर बढ़ने का प्रयत्न करो।

इस संसार में विना प्रतिकार, विना हिंसा, और विना इच्छा के कोई रह ही नहीं सकता। अभी संसार उस अवस्था में नहीं पहुँचा, जब कि ये आदर्श समाज में प्राप्त किये जा सकें। सब प्रकार की बुराइयों में से गुज़रते हुए संसार की जो उन्नति हो रही है वह उसे धीरे धीरे तथा निश्चित रूप से इन आदर्शों के योग्य बना रही है। अधिकांश जनता को तो इस मंद गति के विकास के संग चलना पड़ेगा, पर असाधारण लोग इन आदर्शों को शीघ्र ही प्राप्त कर सकते हैं।

जो जिस समय का कर्तव्य है, उसका पालन करना सब से अच्छा मार्ग है, और यदि वह केवल कर्तव्य समझ कर किया जाय तो वह मनुष्य को आसक्त नहीं बनाता।

संगीत सर्वोत्तम कला है और जो उसे समझते हैं उनके लिए वह सर्वोत्तम उपासना भी है।

हमें अज्ञान और बुराई का नाश करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये; परन्तु हमें यह सीखना है कि शुभ की वृद्धि से ही अशुभ नष्ट होता है। प्रेमपूर्वक तुम्हारा—विवेकानन्द

(श्रीयुत आलासिंगा पेरुमल को)

१४ ग्रेकोट गार्डन्स,
वेस्टमिन्स्टर, लन्दन,
१८९६

प्रिय आलासिंगा,

मैं तीन सप्ताह हुए स्विट्ज़रलैण्ड से लौटा........लन्दन में काम शीघ्रता से बढ़ रहा है और हमारी कक्षाएँ बड़ी होती जा रही

इण्डियन समाचार पत्र है, उसने मेरी पुस्तक 'राजयोग' की अनुकूल समालोचना की है। मैंने सुना है कि अमेरिका के प्रधान शरीर-शास्त्रज्ञ मेरे विचारों पर मुग्ध हो गए हैं। उसके साथ ही इङ्गलैण्ड में कुछ लोगों ने मेरे विचारों का परिहास किया है। यह ठीक ही है; क्योंकि यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि मेरे विचार पूरे बेधड़क हैं, और बहुत कुछ उनमें से हमेशा के लिये अर्थहीन रहेंगे, परन्तु उनमें कुछ ऐसे संकेत भी हैं, जिन्हें शरीर-शास्त्रज्ञों को शीघ्र ही ग्रहण कर लेना चाहिये। तथापि उसके परिणाम से मैं बिलकुल संतुष्ट हूँ। "वे चाहे मेरी निन्दा करें, परन्तु मेरी चर्चा करने दो" यह मेरा आदर्श वाक्य है।

....मेरे वीर लड़को, उद्योग करो। हमने अभी कार्य आरम्भ ही किया है। निराश न हो! कभी न कहो कि बस इतना काफी है!.... जैसे ही मनुष्य पश्चिम में आकर दूसरे राष्ट्रों को देखता है, उसकी आँखें खुल जाती हैं। इस तरह मुझे बलवान काम करने वाले मिल जाते हैं—बातों से नहीं, प्रत्यक्ष दिखाने से कि हमारे पास भारत में क्या है और क्या नहीं। मेरी इच्छा है कि कम से कम दस लाख हिन्दू पूरे संसार का भ्रमण करें!

प्रेमपूर्वक सदैव तुम्हारा

विवेकानन्द

(कुमारी मेरी हेल को)

दार्जीलिंग,
२८ अप्रैल १८९७

प्रिय मेरी—

कुछ दिन हुए तुम्हारा सुन्दर पत्र मुझे मिला। कल हैरियट के विवाह की सूचना देने का पत्र मिला। भगवान् का आशीर्वाद उस दम्पत्ति के साथ रहे।

....यह सारा देश मेरे स्वागत के लिए सममाव से उठ खड़ा हुआ। हर स्थान में लाखों मनुष्यों की जय-जयकार से अत्यन्त कोलाहल मचा, राजाओं ने मेरी गाड़ी खींची, राजधानियों के मार्गों में स्थान-स्थान पर बड़े बड़े मेहराब बनाये गये, जिन पर शानदार आदर्श-वाक्य अंकित थे—इत्यादि इत्यादि !!! सब बातें शीघ्र ही पुस्तक रूप में प्रकाशित होने वाली हैं और आपके पास एक प्रति पहुँच जायगी। परन्तु अभाग्यवश इङ्गलैण्ड में अत्यन्त परिश्रम से मैं पहले ही थका हुआ था, और दक्षिण भारत की गर्मी में इस अत्यधिक परिश्रम ने मुझे बिलकुल गिरा दिया। इस कारण भारत के दूसरे भागों में जाने का विचार मुझे छोड़ना पड़ा और मैं सब से निकट के पहाड़ अर्थात् दार्जीलिंग को शीघ्रातिशीघ्र आ गया। अब मैं पहले से बहुत अच्छा हूँ और अल्मोड़े में एक महीना और रहने से मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाऊँगा।

योरोप आने का एक अवसर मैंने अभी-अभी खोया है। राजा अजीतसिंह और कुछ दूसरे राजा शनिवार को इङ्गलैंड के लिए रवाना हो रहे हैं। उन्होंने बहुत यत्न किया कि मैं उनके संग जाऊँ। परन्तु अभाग्यवश डाक्टरों ने मेरा अभी किसी प्रकार का शारीरिक अथवा मानसिक उद्योग करना स्वीकार न किया। इसलिए, अत्यन्त नैराश्य से मुझे वह विचार छोड़ना पड़ा। मैंने अब उसे किसी निकट भविष्य के लिए रख छोड़ा है। मुझे आशा है कि डाक्टर बैरोज़ इस समय तक अमेरिका पहुँच गए होंगे। बेचारे! वे यहाँ अति कट्टर ईसाई-धर्म का प्रचार करने आये थे, और जैसा होना है किसी ने उनकी न सुनी। उन्होंने प्रेम पूर्वक उनका स्वागत किया, परन्तु वह मेरे पत्र के कारण। मैं उनको बुद्धि नहीं दे सकता था! इसके अतिरिक्त वे कुछ विचित्र थे। मैंने सुना कि मेरे भारत आने पर राष्ट्र ने जो खुशी मनाई उससे वे ईर्षित हो गये। आप लोगों को इससे बुद्धिमान व्यक्ति भेजना उचित था क्योंकि डा० बैरोज़ के कारण हिन्दुओं के मन में धर्मप्रतिनिधि-सभा एक स्वांग सी बन गई है। अध्यात्म-विद्या के सम्बन्ध में पृथ्वी का कोई भी राष्ट्र हिन्दुओं का मार्ग-दर्शन नहीं कर सकता, और विचित्र बात तो यह है कि ईसाई देशों से जितने लोग यहाँ आते हैं वे सब एक प्राचीन मूर्खता-युक्त तर्क करते हैं कि ईसाई धनवान और शक्तिमान है और हिन्दू नहीं हैं, इसलिए ईसाई-धर्म हिन्दू-धर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इस पर हिन्दू युक्ति-युक्त यह प्रत्युत्तर देते हैं कि यही एक कारण है जिससे

हिन्दू-मत धर्म कहला सकता है और ईसाई मत नहीं; क्योंकि इस पाशविक संसार में अधमता और धूर्तता फलती है और गुणवानों को ही दुःख भोगना पड़ता है। यह विदित होता है कि पश्चिमी राष्ट्र वैज्ञानिक संस्कृति में चाहे कितने ही उन्नत क्यों न हों परन्तु तत्वज्ञान और आध्यात्मिक शिक्षा में वे निरे बालक ही हैं। भौतिक विज्ञान केवल लौकिक समृद्धि दे सकता है परन्तु अध्यात्म विज्ञान शाश्वत जीवन के लिए है। यदि शाश्वत जीवन न भी हो तो भी आध्यात्मिक विचारों का आदर्श मनुष्य को अधिक आनन्द देता है, अधिक सुखी बनाता है; परन्तु जड़वाद की मूर्खता ही स्पर्धा, अयोग्य और तीव्र अभिलाषा, एवं व्यक्ति तथा राष्ट्र की अन्तिम मृत्यु का साधन होती है।

यह दारजीलिंग एक रमणीक स्थान है। बादलों के हटने पर कभी-कभी देदीप्यमान कञ्चनजंगा (२८,१४६ फुट) का दृश्य दिखता है, और कभी-कभी एक समीपवर्ती शिखर से गौरीशङ्कर (२९,००२ फुट) की झलक दिख जाती है। फिर यहाँ के लोग भी अति सुन्दर होते हैं—तिब्बती, नैपाली और सब से ज्यादा रूपवती लेपचा स्त्रियाँ। क्या आप एक कोलसन टर्नबुल नामक शिकागो निवासी को जानती हैं? मेरे भारत पहुँचने से कुछ सप्ताह पहले से वह यहाँ था। मालूम होता है कि मैं उसे बहुत अच्छा लगा था जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं को वह बहुत प्रिय हो गया। जो (Joe), श्रीमती ऐडम्स, सिस्टर जोसेफ़ीन और हमारे अन्य

मित्रों का क्या हाल है ? हमारे प्राणप्रिय मिल्स कहाँ हैं ? धीरे-धीरे परिश्रम से निश्चित मार्ग पर चल रहे हैं ? मैं हैरियट को विवाह के निमित्त कुछ उपहार भेजना चाहता था परन्तु आपके यहाँ की भयंकर चुंगियों के डर से किसी निकट भविष्य के लिए यह स्थगित कर दिया। कदाचित् मैं उनसे योरोप में जल्दी ही मिलूँगा। निश्चय ही मैं बड़ा खुश होता यदि आप अपनी सगाई की घोषणा कर देतीं और मैं एक पत्र में आधे दर्जन कागज़ों को भर कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर देता....

मेरे केश झुंड के झुंड में सफ़ेद हो रहे हैं और मेरे मुख पर चारों ओर से झुर्रियाँ पड़ रही हैं; शरीर का माँस घटने से बीस वर्ष मेरी आयु बढ़ी हुई मालूम पड़ती है।........मैं एक ब्राह्मण परिवार के संग रहता हूँ जो स्त्रियों को छोड़कर सब ढीले पायजामे पहनते हैं। मैं भी वही पहनता हूँ। यदि आप मुझे पहाड़ी हिरन की तरह चट्टान से चट्टान पर कूदता हुआ देखतीं, या पहाड़ी रास्तों में ऊपर नीचे भागता हुआ देखतीं तो आश्चर्य से स्तब्ध हो जातीं।

मैं यहाँ बहुत अच्छा हूँ क्योंकि शहरों में मेरा जीवन एक यन्त्रणा सा हो गया था। यदि राह में मेरी झलक भी दिख जाती थी तो तमाशा देखने वालों का जमघट लग जाता था !! विख्याति में केवल दूध और शहद ही घुला हुआ नहीं मिलता। अब मैं बड़ी सी दाढ़ी बढ़ाने वाला हूँ जिसके बाल तो अब सफ़ेद हो ही रहे हैं। इससे रूप पूजनीय हो जाता है और वह मुझे अमेरिकन निन्दा करने वालों से भी बचाती है। हे सित केश, तुम कितना छिपा सकते हो, धन्य हो तुम !

डाक का समय हो गया है इसलिए मैं समाप्त करता हूँ। सुस्वप्न, सुस्वास्थ्य और सब आशीर्वाद तुम्हारे संग हों।

माता, पिता और तुम सबको मेरा प्यार।

तुम्हारा—

विवेकानन्द

आलमबाज़ार मठ, कलकत्ता,

५ मई १८९७

प्रिय—,

मैं अपने बिगड़े हुए स्वास्थ्य को संभालने एक मास के लिए दारजीलिंग गया था। मैं पहले से बहुत अच्छा हूँ। दारजीलिंग में मेरा रोग पूर्ण रूप से हट गया। स्वास्थ्य-सुधार को पूरा करने के लिए कल मैं एक और पहाड़, अल्मोड़ा जा रहा हूँ।

जैसा कि मैं पहले आपको लिख चुका हूँ, यहाँ सब चीजें बहुत आशाजनक नहीं मालूम होतीं, यद्यपि सम्पूर्ण राष्ट्र ने समभाव से मेरा सम्मान किया और उत्साह से लोग बिलकुल पागल से हो गए। भारत में व्यावहारिक बुद्धि की कमी है। फिर कलकत्ते के निकट ज़मीन का मूल्य बहुत बढ़ गया है। तीनों राजधानियों में तीन केन्द्र स्थापित करना—अभी मेरा यह विचार है। ये मेरी प्रचारकों को तैयार करने की मानों पाठशालाएँ होंगी जहाँ से मैं भारत पर आक्रमण करना चाहता हूँ।

चाहे मैं कुछ वर्ष और जीऊँ या न जीऊँ परन्तु भारत पहले से ही श्रीरामकृष्ण का होगया है।

मुझे डाक्टर जेन्स का एक अत्यन्त कृपामय पत्र मिला जिसमें उन्होंने पतित बौद्ध-मत पर मेरे विचारों की आलोचना की है। आपने भी लिखा है कि उस पर डी—अति क्रुद्ध है। श्रीमान् डी— एक सज्जन मनुष्य हैं और मुझे उनसे प्रेम है, परन्तु भारतीय बातों पर उनका आवेश सर्वथा दोषयुक्त होगा।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जो आधुनिक हिन्दू धर्म कहलाता है और जो सदोष है, वह अवनत बौद्ध मत का ही एक रूप है। हिन्दुओं को स्पष्टता से इसे समझ लेने दो, फिर उन्हें उसके त्याग करने में कोई आपत्ति न होगी। वह बौद्धमत का प्राचीन रूप जिसका बुद्धदेव ने उपदेश दिया था वह और उनका व्यक्तित्व मेरे लिए परम पूजनीय हैं। और आप अच्छी तरह जानते हैं कि हम हिन्दू लोग उन्हें अवतार मानकर उनकी पूजा करते हैं। लङ्का का बौद्ध धर्म भी किसी काम का नहीं है। मेरी लंका की यात्रा ने मुझे इस भ्रम से भी मुक्त कर दिया, और जीवित जाति में वहाँ केवल हिन्दू ही हैं। वहाँ के बौद्ध विलायती रंग में रंगे हुए हैं, यहाँ तक कि श्रीमान डी— और उनके पिता के विलायती नाम थे, जो उन्होंने अब बदले हैं। अपने अहिंसा के महान् सिद्धान्त का वह इतना ही आदर करते हैं कि उन्होंने कसाईखाने जगह-जगह खोल रखे हैं! और उनके पुरोहित इसमें उनकी सहायता करते हैं! वह असली बौद्ध मत जिसका मैंने

एक बार विचार किया था वह अभी तक बहुत कल्याण करने में समर्थ होता। परन्तु मैंने अब वह विचार छोड़ दिया और मैं स्पष्टता पूर्वक उस कारण को देखता हूँ जिससे बौद्ध धर्म भारत से निकाला गया और हमें बड़ा हर्ष होगा यदि लङ्कावासी भी इस धर्म के अवशेष रूप को, उसकी विकराल मूर्तियों तथा व्यभिचारी आचार सहित त्याग देंगे।

थियोसोफिस्ट लोगों के विषय में आपको यह स्मरण रखना चाहिये कि भारत में थियोसोफिस्ट और बौद्धों का अस्तित्व शून्य के समान है। वे कुछ समाचार-पत्र प्रकाशित करते हैं, जिनके द्वारा बड़ा हल्लागुल्ला मचाते हैं और पश्चिमियों को आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं..............

मैं अमेरिका में एक मनुष्य था और यहाँ दूसरा हूँ। यहाँ पूरा राष्ट्र मुझे अपना नेता मानता है, और वहाँ मैं एक ऐसा प्रचारक था जिसकी निन्दा की जाती थी। यहाँ राजा मेरी गाड़ी खींचते हैं, वहाँ मैं किसी शिष्ट होटल में प्रवेश नहीं कर सकता था। इसलिये मेरे यहाँ के शब्द मेरे देशवासी तथा मेरी जाति के कल्याणार्थ होने चाहिये, चाहे वे थोड़े से लोगों को कितने ही अप्रिय क्यों न जान पड़ें। सच्ची और निष्कपट बातों के लिए स्वीकृति, प्रेम और सहिष्णुता—परन्तु छल-कपट के लिए नहीं।—एस ने मेरी चापलूसी और मिथ्या-प्रशंसा करने का यत्न किया था क्योंकि भारत में मैं अब नेता माना जाता हूँ। इसलिए मुझे यह आवश्यक हो गया कि मैं अपना कार्य

रोककर कुछ साहसी और निश्चित शब्दों से उनका खण्डन करता। मैं बहुत खुश हूँ। यदि मेरा स्वास्थ्य ठीक होता तो मैं इस समय तक इन नए उत्पन्न हुए पाखंडियों की भारत से सफ़ाई कर देता, कम से कम भरसक प्रयत्न तो करता ही........मैं आपसे कहता हूँ कि भारत पहले ही रामकृष्ण का हो चुका है और पवित्र हिन्दू धर्म के लिए मैंने यहाँ अपने काम का कुछ संगठन किया है।

आपका—विवेकानन्द

(श्रीयुत प्रमदादास मित्र को)

अलमोड़ा,
२० मई १८९७

प्रिय महाशय,

मैंने सुना है कि आपके ऊपर गृहस्थ सम्बन्धी कोई अनिवार्य दुःख आ पड़ा है। आप जैसे ज्ञानी मनुष्य का यह दुःख क्या कर सकता है? इस संसार के मायामय जीवन के प्रसंग में मित्रता के स्निग्ध व्यवहार की प्रेरणा से मुझे इसकी चर्चा करना आवश्यक हो जाता है। परन्तु वे दुःख के पल, बहुधा आध्यात्मिक अनुभव को उच्चतर रूप से व्यक्त करते हैं। जैसे कि थोड़ी देर के लिए बादल हट गए हों और सत्य रूपी सूर्य चमक उठे। कुछ लोगों के लिए ऐसी अवस्था में आधे बंधन शिथिल पड़ जाते हैं। सब से बड़ा बंधन है मान का,—नाम डूबने का भय मृत्यु के भय से प्रबल है; और यह

बंधन भी कुछ ढीला दिखाई देता है। जैसे कि एक क्षण के लिए मन को यह अनुभव हुआ हो कि मनुष्यों के मतों की अपेक्षा अन्तर्यामी प्रभु की ओर ध्यान देना अच्छा है। परन्तु फिर से बादल आकर घेर लेते हैं—और यही माया है।

यद्यपि बहुत दिनों से मेरा आपसे पत्र-व्यवहार नहीं था, परन्तु औरों से मैं प्रायः आपका सब समाचार सुनता रहा हूँ। कुछ समय हुआ आपने कृपापूर्वक मुझे इङ्गलैण्ड में गीता के अनुवाद की एक प्रति भेजी थी। उसकी जिल्द पर आपके हाथ की एक पंक्ति लिखी हुई थी। इस उपहार की स्वीकृति थोड़े से ही शब्दों में दी जाने के कारण मैंने सुना कि आपके प्रति मुझे जो पुराना प्रेम है उसमें आपको सन्देह उत्पन्न हुआ।

कृपा करके इस सन्देह को आधार रहित जानिये। उस संक्षिप्त स्वीकृति का कारण यह था कि चार पाँच वर्ष में मैंने आपकी लिखी हुई एक ही पंक्ति उस अँग्रेजी गीता की जिल्द पर देखी, इस बात से मैंने यह विचार किया कि यदि इससे अधिक लिखने का आपको अवकाश न था तो क्या अधिक पढ़ने का अवकाश हो सकता था? दूसरी बात, मुझे यह पता लगा कि हिन्दू धर्म के सफेद चमड़े वाले उपदेशकों के आप विशेष मित्र हैं और दुष्ट काले भारतवासी आपकी घृणा के पात्र हैं! यह मन में शंका उत्पन्न करने वाला विषय था! तीसरे, मैं म्लेच्छ, शूद्र इत्यादि हूँ—जो मिले सो खाता हूँ, वह भी जिस किसी के संग और सभों के सामने—चाहे

देश हो या परदेश। इसके अतिरिक्त मेरी विचार-धारा में एक विशेष परिवर्तन हो गया है—मैं एक निर्गुण अक्षर ब्रह्म को देखता हूँ, और कुछ कुछ समझता भी हूँ, और कुछ इने गिने व्यक्तियों में भी उस ब्रह्म का विशेष आविर्भाव भी देखता हूँ; यदि वे व्यक्ति ईश्वर के नाम से पुकारे जायँ तो मैं इस विचार को बुद्धि से ग्रहण कर सकता हूँ—परन्तु बौद्धिक सिद्धान्तों के द्वारा माने हुये विधाता आदि की ओर मन आकर्षित नहीं होता।

ऐसा ईश्वर मैंने अपने जीवन में देखा है और उनके आदेशों का पालन करने के लिए मैं जीवित हूँ। स्मृति और पुराण—सीमित बुद्धि वाले व्यक्तियों की रचनायें हैं और हेत्वाभास और त्रुटियाँ, वर्णभेद और द्वेष से परिपूर्ण हैं। उनके कुछ अंश जिनमें मन की उदारता और प्रेम का आविर्भाव है, ग्रहण करने योग्य हैं और शेष सब का त्याग कर देना चाहिये। उपनिषद् और गीता सच्चे शास्त्र हैं, और राम, कृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, नानक, कबीर आदि सच्चे अवतार हैं; क्योंकि उनके हृदय आकाश के समान विशाल थे—और इन सब में श्रेष्ठ हैं रामकृष्ण। रामानुज, शंकर इत्यादि संकीर्ण हृदय वाले केवल पण्डित मालूम होते हैं। वह प्रेम कहाँ है, वह हृदय जो दूसरों का दुःख देखकर द्रवित हो? पण्डितों का शुष्क विद्याभिमान—जैसे-तैसे केवल अपने आप को मुक्त करने की भावना! परन्तु महाशय, क्या यह सम्भव है? क्या इसकी कभी सम्भावना थी या हो सकती है? क्या अहं-भाव का अल्पांश भी रहने से किसी चीज़ की प्राप्ति हो सकती है?

मुझमें और एक विरुद्ध भाव उत्पन्न हुआ है: मेरे मन में दिनोंदिन यह विश्वास बढ़ता चला जा रहा है कि जाति का भाव सब से अधिक भेद उत्पन्न करने वाला और माया का मूल है—सब प्रकार का जातिभेद चाहे वह जन्मगत हो या गुणगत, बन्धन ही है। कुछ मित्र यह उपदेश देते हैं, "सच है, मन में ऐसा ही समझो, परन्तु व्यावहारिक जगत् में जाति जैसे भेदों का रहना उचित ही है।"..........मन में एकता का भाव (कैसी आत्मवंचना!)—और बाह्य जगत में राक्षसों का नरक-नृत्य—अत्याचार और उत्पीड़न—दरिद्र को मृत्यु का संदेश! परन्तु यदि उस अछूत के पास पर्याप्त धन हो तो "अरे वह तो धर्म का रक्षक है!"

सब से अधिक यह, कि मैंने अपने अध्ययन से यह जाना है कि धर्म के विधिनिषेधादि नियम शूद्र के लिए नहीं हैं; यदि वह भोजन में या विदेश जाने में कुछ विचार दिखाये, तो उसके लिए यह सब व्यर्थ है, केवल निरर्थक परिश्रम। मैं शूद्र हूँ, म्लेच्छ हूँ, इसलिए मुझे इन सब झंझटों से क्या सम्बन्ध? मेरे लिये म्लेच्छ का भोजन हुआ तो क्या, और शूद्र का हुआ तो क्या? पुरोहितों की लिखी हुई पुस्तकों में ही जाति जैसे पागल विचार पाए जाते हैं, परन्तु ईश्वर द्वारा प्रकट की हुई पुस्तकों में नहीं। अपने पूर्वजों के कार्य का फल पुरोहितों को भोगने दो; और मैं ईश्वरीय वचनों का अनुसरण करूँगा, क्योंकि मेरा कल्याण उसी में है।

एक और सत्य जिसका मैंने अनुभव किया है वह यह है कि निःस्वार्थ सेवा ही धर्म है और बाह्य विधि, अनुष्ठान आदि केवल पागलपन है—अपनी मुक्ति की अभिलाषा करना भी अनुचित है। मुक्ति केवल उसके लिए है जो दूसरों के लिए सर्वस्व त्याग देता है, परन्तु वे लोग जो "मेरी मुक्ति" "मेरी मुक्ति" की अहर्निश रट लगाए रहते हैं वे वर्तमान और भविष्य में आत्मकल्याण का सर्वथा नाश कर देते हैं, और यह मैंने कई बार अपनी आँखों से देखा है। इन विविध विषयों पर विचार करते हुए आपको पत्र लिखने के लिए मेरा मन न चाहा। इन सब मत-भेदों के होते हुए यदि आपका प्रेम मेरे प्रति पहले जैसा ही रहे तो मैं इसे बड़े आनन्द का विषय समझूँगा।

आपका,
विवेकानन्द

अलमोड़ा,
१ जून १८९७

प्रिय—,

वेदों के विरुद्ध आपने जो तर्क किया है, वह अखण्डनीय होता, यदि 'वेद' शब्द का अर्थ 'संहिता' होता। भारत में यह सर्वसम्मत है कि 'वेद' शब्द में तीन भाग सम्मिलित हैं—संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद्। इनमें से पहले दो भाग कर्मकाण्ड सम्बन्धी होने के

कारण अब लगभग एक ओर कर दिये गए हैं। सब मतों के निर्माताओं तथा तत्त्वज्ञानियों ने केवल उपनिषदों को ही ग्रहण किया है।

संहिता ही केवल वेद हैं, यह स्वामी दयानन्द का शुरू किया हुआ बिल्कुल नया विचार है; और पुरातनमतावलम्बी या सनातनी जनता में इसको मानने वाला कोई नहीं है।

इस मतावलम्बन का कारण यह था कि स्वामी दयानन्द यह समझते थे कि संहिता की एक नई व्याख्या के अनुसार वे पूरे वेद का एक सुसंगत सिद्धान्त निर्माण कर सकेंगे। परन्तु कठिनाइयाँ कुछ कम न हुईं, केवल वे अब ब्राह्मण* भाग के सम्बन्ध में उठ खड़ी हुई और अनेक व्याख्याओं तथा प्रक्षिप्तता की कल्पनाओं का सहारा लेने पर भी बहुत कुछ कठिनाइयाँ शेष ही रह गईं।

अब यदि यह सम्भव है कि संहिता के आधार पर एक समन्वयपूर्ण धर्म का निर्माण किया जाय तो हज़ार हज़ार बार यह अधिक सम्भव है कि एक समन्वयपूर्ण और सामञ्जस्य-युक्त मत उपनिषदों के आधार पर बन सकता है; फिर इसमें पहले से प्राप्त राष्ट्रीय सम्मति के विपरीत न जाना पड़ेगा। यहाँ भूत काल के सब आचार्य तुम्हारा साथ देंगे और उन्नति के नये मार्गों का विशाल क्षेत्र तुम्हारे सामने खुला है।

निस्सन्देह गीता हिन्दुओं की बाइबल बन चुकी है और वह इस मान के सर्वथा योग्य भी है। परन्तु श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व

* वेदों के एक भाग का नाम

यदि प्रकृति का यह नियम हो कि जब पृथ्वी जल से डूब जाय तो पानी पीना व्यर्थ हो जाय, और यदि किसी विशेषहवा की नाली से, अथवा और किसी गुप्त रीति से लोगों की प्यास बुझ सके, तभी यह अद्भुत व्याख्या अनुरूप हो सकती है, अन्यथा नहीं।

तुम्हें श्रीशंकराचार्य का अनुसरण करना चाहिये।

या इस प्रकार भी कर सकते हो—

जैसे कि, जब बड़े-बड़े भूमि-भाग जल से प्लावित होते हैं तब भी छोटे-छोटे तालाब प्यासे मनुष्यों के लिए बहुत उपयोगी होते हैं (अर्थात् उसके लिए थोड़ा सा पानी भी पर्याप्त होता है, और वह मानों कहता है, इस महान जल-राशि को रहने दो, मेरा काम तो थोड़े से जल से भी चल जाएगा)—उसी प्रकार विद्वान् ब्राह्मण को सम्पूर्ण वेद उपयोगी होंगे। जैसे भूमि के जल में डूबे हुए होने से भी हमें केवल पानी पीने से मतलब है, और कुछ नहीं, इसी प्रकार वेदों से हमारा अभिप्राय केवल ज्ञान की प्राप्ति है।

यह एक और व्याख्या है जिससे लेखक का अर्थ अधिक योग्य प्रतीत होता है :

जब भूमि जल से प्लावित भी होती है तब भी लोग हितकर और पीने योग्य जल की ही खोज करते हैं, और दूसरे प्रकार के जल की नहीं। यद्यपि भूमि पानी से प्लावित हो जाती है फिर भी उस पानी के अनेक प्रकार के भेद होते हैं, और उसमें भिन्न भिन्न गुण और धर्म पाये जाते हैं। वे भेद आश्रयभूत भूमि के गुण और

धर्म के अनुसार होते हैं। इसी प्रकार बुद्धिमान ब्राह्मण भी अपनी मुक्ति-तृष्णा को शान्त करने के लिए उस शब्द-समुद्र में से—जिसका नाम वेद है तथा जो अनेक प्रकार की ज्ञानधाराओं से पूर्ण है—उसी धारा को खोजेगा जो उसे मुक्ति के पथ में लेजाने के लिए समर्थ हो। और यह ज्ञानधारा ब्रह्मज्ञान ही है जो ऐसा कर सकती है।

आशीर्वाद और शुभ-कामनाओं सहित, तुम्हारा—

विवेकानन्द

अलमोड़ा,
३ जून १८९७

प्रिय—,

....मैं अपनी अवस्था पर बिल्कुल संतुष्ट हूँ। मैंने बहुत से स्वजनों को जाग्रत कर दिया है और इतना ही मैं चाहता था। अब जो कुछ होना है, होने दो; 'कर्म' के नियम को अपनी गति के अनुसार चलने दो। मुझे यहाँ इस लोक में कोई बंधन नहीं है। मैंने जीवन देखा है और वह सब स्वार्थ के लिये है,—जीवन स्वार्थ के लिये, प्रेम स्वार्थ के लिये, मान स्वार्थ के लिये, सब चीजें स्वार्थ के लिये हैं। मैं पीछे दृष्टि डालता हूँ और यह नहीं पाता हूँ कि मैंने शायद कोई भी कर्म स्वार्थ के लिये किया है। यहाँ तक कि मेरे बुरे कर्म भी स्वार्थ के लिये नहीं थे। अतएव मैं संतुष्ट हूँ; यह बात नहीं कि मैं यह समझता हूँ कि मैंने कोई विशेष महत्वपूर्ण या अच्छा

कार्य किया हो, परन्तु संसार इतना क्षुद्र है, जीवन इतना तुच्छ है, जीवन में इतनी विवशता है—कि मैं मन ही मन हँसता हूँ और आश्चर्य करता हूँ कि मनुष्य, जो कि विवेकी जीव है, इस क्षुद्र स्वार्थ के पीछे भागता है—ऐसे कुत्सित और घृणित पारितोषिक के लिये लालायित रहता है !

यह सत्य है। हम एक पिंजरे में फँस गए हैं, और जितनी जल्दी इसमें से निकल सकेंगे उतना ही अच्छा हमारे लिए होगा। मैंने सत्य का दर्शन कर लिया है—इस शरीर को ऊपर तैरने दो या डूबने दो, क्या चिन्ता है !

जहाँ मैं रह रहा हूँ यह बड़ा सुन्दर पहाड़ी उद्यान है। उत्तर दिशा में, प्रायः क्षितिज के समान विस्तृत हिमाच्छादित हिमालय के शिखर पर शिखर दिखाई देते हैं—वे सघन बन से परिपूर्ण हैं। यहाँ न ठंड है, न अधिक गर्मी; प्रातः और सायं अत्यन्त मनोहर हैं। मैं गर्मी में यहाँ रहूँगा और वर्षा के आरम्भ में, काम करने नीचे जाना चाहता हूँ।

मैंने विद्याभिलाषी जीवन के लिए जन्म लिया था—एकान्त और शान्ति से अध्ययन में लीन। परन्तु जगदम्बा का विधान दूसरा ही है—फिर भी वह प्रवृत्ति अभी भी है।

आपका,
विवेकानन्द

(स्वामी अखण्डानन्दजी को)

अलमोड़ा
१५ जून १८९७

प्रिय अखण्डानन्द,—

तुम्हारे कुशल मंगल का समाचार मुझे विस्तार पूर्वक मिल रहा है, और मेरा आनन्द अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। तुम्हारा उस प्रकार का कर्म है जो जगत पर विजय पा सकता है। सम्प्रदाय और मत-भेद कुछ महत्व नहीं रखते। शाबाश! मेरे लाखों आलिङ्गन और आशीर्वाद स्वीकार करो। कर्म, कर्म, कर्म,—मुझे और किसी चीज़ की परवाह नहीं है। मृत्यु-पर्यन्त कर्म, कर्म, कर्म! जो दुर्बल हैं उन्हें अपने आप को महान् कर्मी बनाना है, महावीर—धन की चिन्ता न करो, वह आकाश से बरसेगा। जिनकी भेंट तुम स्वीकार करते हो उन्हें अपने नाम से देने दो, इसमें कुछ हानि नहीं। किसका नाम और उसका क्या मूल्य है? नाम के लिए कौन परवाह करता है? उसे अलग रख-दो! यदि भूखों को भोजन का ग्रास देने में नाम, सम्पत्ति और सब कुछ नष्ट हो जायँ तब भी—अहो भाग्यमहोभाग्यम् 'तब भी बड़ा भाग्य है'—अत्यन्त भाग्यवान हो तुम! हृदय और हृदय ही विजय प्राप्त करता है, मस्तिष्क नहीं। पुस्तकें और विद्या, योग ध्यान और अनुभूति—प्रेम की तुलना में ये सब धूलि के समान हैं। प्रेम से अलौकिक शक्ति मिलती है, प्रेम से भक्ति उत्पन्न होती है, प्रेम ही ज्ञान देता है, और प्रेम ही मुक्ति की ओर ले जाता है। यह निश्चय ही उपासना

है, क्षण-भँगुर मानवी शरीर में यही ईश्वर की उपासना है, "नेदं यदिदमुपासते"—"वह नहीं, जिसको मनुष्य पूजते हैं।" यह तो अभी आरम्भ ही है, और जबतक हम इसी प्रकार पूरे भारत में ही न फैल जायँ, नहीं-नहीं, सम्पूर्ण पृथ्वी पर, तबतक हमारे प्रभु की बड़ाई ही क्या होगी !

लोगों को देखने दो कि हमारे प्रभु के चरण-स्पर्श से मनुष्य को देवत्व प्राप्त होता है या नहीं ! इसे जीवन्मुक्ति कहते हैं, जब अहंकार और स्वार्थ का चिन्ह भी नहीं रहता। शाबाश ! श्रीप्रभु की जय हो ! धीरे-धीरे भिन्न भिन्न स्थानों में जाओ। यदि हो सके तो कलकत्ता जाओ, लड़कों की दूसरी मण्डली की सहायता से धन एकत्रित करो; उनमें से दो-एक को एक स्थान में लगाओ, और तुम किसी और स्थान से आरम्भ करो। इस प्रकार धीरे-धीरे फैलो और उनका निरीक्षण करते रहो। तुम देखोगे कि यह काम कुछ समय के बाद स्थायी रूप से स्थापित हो जायगा और धर्म तथा शिक्षा का प्रचार इसके साथ स्वयं हो जायगा। मैंने कलकत्ते में उन लोगों को विशेष रूप से समझा दिया है। इस प्रकार का काम करो और तुम्हें मैं अपने कंधे पर चढ़ा लूँगा—शाबाश ! तुम देखोगे कि धीरे-धीरे हर जिला केन्द्र बन जायगा—और वह भी स्थायी केन्द्र। मैं शीघ्र ही नीचे (मैदान में) जाने वाला हूँ। मैं योद्धा हूँ और मैं रणक्षेत्र में मरूँगा। क्या मुझे यहाँ पर्दे की स्त्री की तरह बैठना शोभा देता है ?

परम प्रेम से तुम्हारा,

विवेकानन्द

(श्रीयुत शरच्चन्द्र चक्रवर्ती को *)

अलमोड़ा,
२ जुलाई १८९७

प्रिय शरच्चन्द्र,

शास्त्र के वे ग्रन्थकर्ता, जो कर्म की ओर रुचि नहीं रखते, कहते हैं कि सर्वशक्तिमान भावी प्रबल है; परन्तु अन्य लोग जो कर्म करने वाले हैं, समझते हैं कि मनुष्य की इच्छा-शक्ति श्रेष्ठतर है। जो मानवी इच्छा-शक्ति को दुःख हरने वाला समझते हैं, और जो भाग्य का भरोसा करते हैं, इन दोनों पक्षों में जो लड़ाई है उसका कारण अविवेक समझो; और ज्ञान की उच्चतम अवस्था में पहुँचने का प्रयत्न करो।

यह कहा गया है कि विपत्ति सच्चे ज्ञान की कसौटी है, और यह कथन 'तत्त्वमसि' (तू वह है) इस सत्य के बारे में तो हज़ार गुना अधिक सच है। यह वैराग्य की बीमारी का सच्चा निदान है। धन्य हैं वे, जिनमें यह सच्चा लक्षण पाया जाता है। यद्यपि तुम्हें यह बुरा लगता है, तथापि मैं यह कहावत पुनः कथन करता हूँ "कुछ देर ठहरो"। तुम खेते-खेते थक गए हो, अब डांड़ पर आराम करो। गति के आवेग से नाव उस पार पहुँच जायगी। यही गीता में कहा है—तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति, अर्थात् "उस ज्ञान को समय पाकर अच्छे प्रकार शुद्धान्तःकरण हुआ साधक समत्व

* यह पत्र मूल संस्कृत में लिखा था।

बुद्धिरूप योग के द्वारा स्वयं अपनी आत्मा में अनुभव करता है।" और, उपनिषद् में कहा है—न धनेन न प्रजया त्यागेनैके अमृतत्व-मानशुः अर्थात् "न धन से, न सन्तान से, परन्तु केवल त्याग से अमरत्व प्राप्त हो सकता है" (कैवल्य २) 'त्याग' शब्द से वैराग्य का संकेत किया गया है। यह दो प्रकार का हो सकता है—उद्देश्य-पूर्ण और उद्देश्यहीन। यदि दूसरी प्रकार का हो तो उसके लिए केवल वही यत्न करेगा, जिसका दिमाग़ खराब हुआ हो; परन्तु यदि पहले से अभिप्राय हो तो वैराग्य का अर्थ होगा कि मन को अन्य वस्तुओं से हटाकर भगवान या परमात्मा में लीन कर लेना। सब का स्वामी (परमात्मा) कोई व्यक्तिविशेष नहीं हो सकता, वह तो सब की समष्टि स्वरूप ही होगा। वैराग्यवान मनुष्य आत्मा शब्द का अर्थ व्यक्तिगत "मैं" न समझकर, उस सर्वव्यापी ईश्वर को समझता है जो अन्तर्यामी होकर सब में वास कर रहा है। वे समष्टि के रूप में सब को प्रतीत हो सकते हैं। ऐसा होते हुए, जब जीव और ईश्वर स्वरूपतः अभिन्न हैं, तब जीवों की सेवा और ईश्वर से प्रेम करने का अर्थ एक ही है। यहाँ एक विशेषता है। जब जीव को जीव समझकर सेवा की जाती है तब वह दया है, किन्तु प्रेम नहीं; परन्तु जब उसे आत्मा समझ कर सेवा करो, तब वह प्रेम कहलाता है। आत्मा ही एक मात्र प्रेम का पात्र है, यह श्रुति स्मृति और अपरोक्षानुभूति से जाना जा सकता है। भगवान चैतन्य ने इसलिए यह ठीक कहा था—"ईश्वर से प्रेम और जीवों पर दया।"

वे द्वैतवादी थे, इसलिए उनका अन्तिम निर्णय जिसमें वे जीव और ईश्वर में भेद करते हैं, उनके लिए ठीक है। परन्तु हम अद्वैतवादी हैं। हमारे लिए जीव को परमात्मा से पृथक समझना बंधन का कारण है। इसलिए हमारा मूलतत्व दया न होना चाहिये, परन्तु प्रेम। मुझे तो जीवों के प्रति 'दया' शब्द का प्रयोग विवेकरहित और व्यर्थ जान पड़ता है। हमारा करुणा नहीं, वरन् सेवाधर्म है और सब में आत्मा ही को देखना।

जिस वैराग्य का भाव प्रेम है, जो समस्त भिन्नता को एक कर देता है, जो संसार रूपी रोग को स्वस्थ कर देता है, जो इस नश्वर संसार के तीन प्रकार के स्वाभाविक दुःख को मिटा देता है, जो सब चीज़ों के यथार्थ रूप को प्रकट करता है, जो माया के अंधकार को नष्ट करता है, और घास के तिनके से लेकर ब्रह्मा तक सब चीज़ों में आत्मा का स्वरूप दिखाता है, वह वैराग्य हे शर्मन, अपने कल्याण के लिए तुम्हें प्राप्त हो।

यह निरन्तर प्रार्थना है, तुम्हें सदैव प्रेम करने वाले

विवेकानन्द की।

(स्वामी ब्रह्मानन्दजी को)

अलमोड़ा,

९ जुलाई १८९७

प्रिय राखाल—

हमारी सभा के उद्देश्य का पहला प्रूफ मैंने संशोधन करके आज वापस भेजा है। उसके नियम (जो हमारी सभा के सभासदों

में पड़े थ) अशुद्धियों से भरे हैं। उसे सावधानी से ठीक करके फिर से छपवाओ, नहीं तो लोग हँसेंगे।

....बरहमपुर में जैसा काम हो रहा है वह बहुत ही अच्छा है। इस प्रकार के कामों की विजय होगी—क्या केवल मतवाद और सिद्धान्त हृदय को स्पर्श कर सकते हैं? कर्म, कर्म—आदर्श जीवन यापन करो—मतामत का क्या मूल्य है? दर्शन, योग और तपस्या—पूजागृह—आतप चावल या शाक का भोग—यही सब कुछ मनुष्यों या कुछ देशों का धर्म है! दूसरों की भलाई और सेवा करना ही एक महान् सार्वलौकिक धर्म है। पुरुष और स्त्री, युवा और वृद्ध, अछूत तक, नहीं-नहीं, पशु भी इस धर्म को समझ सकते हैं। क्या केवल एक निषेधात्मक धर्म कुछ काम आ सकता है। पत्थर कभी अनैतिक कर्म नहीं करता, गाय कभी झूठ नहीं बोलती, वृक्ष कभी चोरी या डकैती नहीं करते, परन्तु उससे क्या? माना कि तुम चोरी नहीं करते, न झूठ बोलते हो, न अनैतिक जीवन व्यतीत करते हो परन्तु चार घंटे प्रति दिन ध्यान करते हो, और उतने ही घंटे के दुगने समय तक घंटी भक्तिपूर्वक बजाते हो—परन्तु अन्त में इसका क्या उपयोग है? वह कार्य, यद्यपि थोड़ा ही है, परन्तु सदा के लिए बरहमपुर को वह तुम्हारे चरणों पर ले आया है—अब जैसा तुम चाहते हो वैसा ही लोग करेंगे। अब तुम्हें लोगों से यह तर्क नहीं करना पड़ेगा कि "रामकृष्ण ईश्वर हैं"। कार्य के बिना केवल व्याख्यान क्या कर सकता है! क्या मीठे शब्दों से रोटी

चुपड़ी जा सकती है ! यदि तुम दस जिलों में ऐसा कर सको तो ये सब दसों तुम्हारी मुट्ठी में आ जायेंगे। इसलिए तुम ऐसे बुद्धिमान लड़के होते हुए, इस समय अपने कर्मविभाग पर ही जोर दो, और उसकी उपयोगिता को बढ़ाने का प्राणपण से उद्योग करो। कुछ लड़कों को द्वार-द्वार जाने के लिए संगठित करो, और अलखिया साधुओं के समान उन्हें जो मिले वह लाने दो—धन, पुराने वस्त्र, या चावल या खाद्य पदार्थ या और कुछ। फिर उसे बाँट दो। यह कर्म है, निश्चय ही कर्म है। इसके बाद लोगों को श्रद्धा होगी, और फिर तुम जो कहोगे, वे करेंगे।

कलकत्ते की सभा के खर्च को पूरा करने के बाद जो बचे उसे दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता के लिए भेज दो, या जो अगणित दरिद्र कलकत्ते की मैली कुचैली गलियों में रहते हैं उनकी सहायता में उसका व्यय करो—स्मारकभवन और इस प्रकार के कार्यों की कल्पना त्याग दो। प्रभु जो अच्छा समझेंगे वह करेंगे। इस समय मेरा स्वास्थ्य अति उत्तम है।......

क्यों नहीं तुम उपयोगी सामग्री एकत्रित कर रहे हो ?— मैं स्वयं वहाँ आकर पत्रिका आरम्भ करूँगा। प्रेम और दया से सारा संसार खरीदा जा सकता है; व्याख्यान, पुस्तकें और दर्शन—ये सब निम्न श्रेणी में हैं।

कृपा करके शशि को लिखो कि गरीबों की सेवा के लिये इसी प्रकार का एक कर्मविभाग वह भी खोले।

........पूजा का खर्च घटा कर एक या दो रुपये महीने पर ले आओ। श्रीप्रभु की सन्तान भूख से मर रही है........केवल जल और तुलसीपत्र से पूजा करो और उसके भोग के निमित्त धन को उस जीवित ईश्वर को जो दरिद्रों में वास करता है, नैवेद्य चढ़ाने में खर्च करो—तब परमात्मा की सभों पर कृपा होगी। योगेन यहाँ अस्वस्थ रहा, इसलिये आज वह कलकत्ते के लिये रवाना हो गया। मैं कल देवलधर फिर जाऊँगा। कृपया तुम सब मेरा प्रेम स्वीकार करो।

प्रेम पूर्वक तुम्हारा,

विवेकानन्द

(भगिनी निवेदिता को)

अल्मोड़ा,

२९ जुलाई १८९७

प्रिय कुमारी नोबल,

मि० स्टर्डी का एक पत्र कल मुझे मिला जिसमें मुझे यह सूचना मिली कि तुमने भारत आने का, और स्वयं सब चीजों को देखने का मन में ठान लिया है। उसका उत्तर मैं कल दे चुका हूँ, परन्तु मैंने कुमारी मुलर से तुम्हारे इस संकल्प के विषय में जो कुछ सुना उससे यह दूसरा संक्षिप्त पत्र आवश्यक होगया, और अच्छा है कि मैं तुम्हें सीधा ही लिखूँ।

मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि मुझे विश्वास है कि भारत के काम में तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल रूप धारण करेगा। जिसकी आवश्यकता है वह पुरुष नहीं है, परन्तु स्त्री—सच्ची सिंहनी जो भारतीयों के लिये, विशेषकर स्त्रियों के लिये काम करे।

भारत अभी तक भी बड़ी-बड़ी स्त्रियों को उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे दूसरे राष्ट्रों से उन्हें उधार लेना पड़ेगा। तुम्हारी शिक्षा, सच्चा भाव, पवित्रता, महान् प्रेम, दृढ़ निश्चय और सब से अधिक तुम्हारे सेल्टिक (Celtic) रक्त ने तुमको वैसी ही स्त्री बनाया है जिसकी आवश्यकता है।

परन्तु कठिनाइयाँ भी बहुत हैं। यहाँ जो दुःख, कुसंस्कार और दासत्व है उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकती। तुम्हें एक अर्द्ध-नग्न स्त्री-पुरुषों के समूह में रहना होगा जिनके जाति और पृथकता के विचित्र विचार हैं, जो भय और द्वेष से सफ़ेद चमड़े से दूर रहना चाहते हैं और सफ़ेद चमड़े वाले जिनसे स्वयं अत्यन्त घृणा करते हैं। दूसरी ओर श्वेत जाति के लोग तुम्हें सनकी समझेंगे और तुम्हारे आचार-व्यवहार को वे सशंकित दृष्टि से देखते रहेंगे।

फिर यहाँ भयंकर गर्मी पड़ती है; अधिकांश स्थानों में हमारा शीतकाल तुम्हारी गर्मी के समान होता है और दक्षिण में हमेशा आग बरसती रहती है।

नगरों के बाहर विलायती आराम की कोई भी सामग्री नहीं मिल सकती। ये सब बातें होते हुए भी यदि तुम काम करने का

साहस करोगी तो हम तुम्हारा स्वागत करेंगे, सौ बार स्वागत करेंगे। मेरे विषय में यह बात है कि जैसे अन्य स्थानों में वैसे ही मैं यहाँ भी कुछ नहीं हूँ, फिर भी जो कुछ मेरा सामर्थ्य होगा वह तुम्हारी सेवा में लगा दूँगा।

इस कार्य-क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले तुमको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये, और यदि काम करने के बाद तुम असफल हो जाओगी अथवा अप्रसन्न हो जाओगी तो मैं अपनी ओर से तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि चाहे तुम भारत के लिए काम करो या न करो, तुम वेदान्त को त्याग दो या उसमें स्थित रहो, मैं मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारे संग हूँ। "हाथी के दांत बाहर निकलते हैं परन्तु अन्दर नहीं जाते।" इसी तरह मनुष्य के वचन वापस नहीं फिर सकते। यह मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ। फिर से मैं तुमको सावधान करता हूँ। तुमको अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये, और कुमारी मुलर आदि से आश्रित न रहना चाहिये। अपने ढंग की वह एक शिष्ट महिला हैं, परन्तु अभाग्य-वश जब वह बालिका ही थी, तभी से उनके मन में यह बात समाई है कि वह जन्म से ही एक नेता हैं और संसार को हिलाने के लिए धन के अतिरिक्त किसी गुण की आवश्यकता नहीं है। यह भाव फिर-फिर कर उनकी इच्छा के विरुद्ध उनके मन में उठता है और थोड़े दिनों में तुम देखोगी कि उनके संग मिलकर रहना तुम्हारे लिए असम्भव होगा। अब उनका विचार कलकत्ते में एक मकान लेने का है जहाँ तुम और वह तथा अन्यान्य योरोपीयन या अमेरिकन मित्र यदि आकर रहना चाहें तो रह सकें।

उनका विचार शुभ और दयालु है, परन्तु महन्तिन बनने का उनका संकल्प दो कारणों से कभी सफल न होगा—उनका क्रोधी स्वभाव और अहंकारयुक्त व्यवहार, तथा उनका अत्यन्त अस्थिर मन। बहुतों से मित्रता करना दूर से अच्छा रहता है और जो मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होता है उसका हमेशा भला होता है।

श्रीमती सेवियर एक हीरा स्त्री हैं, ऐसी गुणवती और दयालु। केवल सेवियर दम्पत्ति ऐसे अंग्रेज़ हैं जो भारतवासीयों से घृणा नहीं करते, स्टर्डी की भी गिनती इनमें नहीं है। श्रीमान् और श्रीमती सेवियर दो ही व्यक्ति हैं जो अभिमान पूर्वक हमें उत्साह दिलाने नहीं आए थे, परन्तु उनका अभी कोई निश्चित कार्य-क्रम नहीं है। जब तुम आओ तब तुम उन्हें अपने संग काम में लगाओ। इससे तुमको भी सहायता मिलेगी और उन्हें भी। परन्तु अन्त में अपने पैरों पर ही खड़ा होना परमावश्यक है।

अमेरिका से मैंने यह सुना है कि मेरी दो मित्र बोस्टन निवासी श्रीमती बुल और कुमारी मैक्लाउड शरद् ऋतु में भारत आने वाली हैं। कुमारी मैक्लाउड को तुम लन्दन में जानती थीं—वह पैरिस के वस्त्र पहने हुए अमेरिकन युवती; श्रीमती बुल पचास वर्ष के लगभग हैं और अमेरिका में वह सहानुभूति रखने वाली मेरी मित्र थीं।

मैं तुमको यह सम्मति दूँगा कि यदि तुम उनके साथ ही आओगी तो यात्रा की क्लान्ति कम हो जायगी क्योंकि वे भी योरोप होते हुए आरही हैं।

देखते हैं और ज्ञानी ईश्वर के रूप में। और जड़ जगत् में अधिकाधिक आत्मदर्शन—यही है सभ्यता का इतिहास। अज्ञानी अमूर्त (non-person) में मूर्ति (person) को देखते हैं और साधु मूर्तियों में अमूर्त को। सुख और दुःख में, सन्तोप और सन्ताप में हम यही एक सवक सीख रहे हैं।..............

प्रेम और सत्य से सदैव तुम्हारा,

विवेकानन्द

(स्वामी अखण्डानन्दजी को)

मरी,

१० अक्टूबर १८९७

प्रिय अखण्डानन्द—

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे हर्ष हुआ। इस समय तुम्हें बड़े-बड़े कामों का विचार करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु जो वर्तमान परिस्थिति में सम्भव है उतना ही करो। धीरे-धीरे तुम्हारे लिए मार्ग खुल जायगा। अनाथालय अवश्य होना चाहिये, इसमें कोई सोच विचार की बात नहीं है। बालिकाओं को भी हम आपत्ति में नहीं छोड़ सकते। परन्तु बालिका-अनाथालय के लिए हमें एक स्त्री पदाधिकारी की आवश्यकता होगी। मैं समझता हूँ कि माँ—उसके लिए सुयोग्य होगी। या गाँव की किसी सन्तानहीन विधवा को इस काम में लगाओ। और लड़के-लड़कियों के रहने का स्थान पृथक होना चाहिये। कैप्टन सेवियर इस काम की सहायता के लिए धन

भेजने को तैयार हैं। नीडूज होटल, लाहौर, यह उनका पता है। यदि तुम उन्हें लिखो तो ये शब्द भी पत्र के ऊपर लिख देना "आने की प्रतीक्षा की जाय।" मैं जल्दी ही रावलपिण्डी जाने वाला हूँ, कल या परसों। तब मैं जम्मू द्वारा लाहौर और दूसरे स्थानों को देखता हुआ, कराची होता हुआ राजपूताना लौटूँगा। मैं अच्छा हूँ।

तुम्हारा,

विवेकानन्द

पु०—तुम्हें मुसलमान लड़कों को भी ले लेना चाहिये परन्तु उनके धर्म को कभी दूषित न करना। तुम्हें केवल यही करना होगा कि उनके भोजन आदि का प्रबन्ध अलग कर दो और उन्हें शुद्धाचरण, पुरुषार्थ और परहित में श्रद्धापूर्वक तत्परता की शिक्षा दो। यह निश्चय ही धर्म है।

अपने उलझाने वाले दार्शनिक विचारों को कुछ समय के लिये अलग रख दो—वि०

इस समय हमारे देश में पुरुषार्थ और दया की आवश्यकता है। 'स ईशः अनिर्वचनीयप्रेमस्वरूपः'—ईश्वर अनिर्वचनीय प्रेम का स्वरूप है। परन्तु 'प्रकाश्यते क्वापि पात्रे'—"विशेष पात्रों में उसका प्रकाश होता है"; यह कहने के बदले, "स प्रत्यक्ष एव सर्वेषां प्रेमरूपः"—"वह सब जीवों में प्रेमरूप से प्रकट होता है" यह कहना चाहिये। इसे छोड़ और किस ईश्वर की—जिसे कि तुम्हारे मन ने ही निर्माण किया है—तुम पूजा करोगे? वेद, कुरान, पुराण

और सब शास्त्रों को कुछ समय के लिए विश्राम करने दो—मूर्तिमान ईश्वर जो प्रेम और दया स्वरूप है, उसकी उपासना देश में होने दो। भेद के सब भाव बंधन हैं, और अभेद के मुक्ति। विषयों के मद से मतवाले संसारी जीवों के शब्दों से मत डरो। "अभीरभीः"—"निर्भय होओ"। मनुष्य नहीं, कीड़े! सब धर्मों के लड़कों को लेना—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या कुछ भी हों, परन्तु धीरे-धीरे आरम्भ करना—अर्थात् यह ध्यान रखना कि उनका खान-पान कुछ अलग रहता है, और धर्म की सार्वभौमिकता का ही केवल उन्हें उपदेश देना।—वि०

इस भाव में पागल हो जाओ, तथा औरों को भी बना दो, इस जीवन का और कुछ उद्देश्य नहीं है। प्रभु के नाम का प्रचार करो, संसार की रग-रग में उनकी शिक्षा को भिद जाने दो। कभी न भूलो। अपने दैनिक कार्य करते हुए, अन्तरात्मा में निरन्तर इस मंत्र का जप करते रहो।

—तुम्हारा, वि०

('मास्टर महाशय' को)

देहरादून,
२४ नवम्बर १८९७

प्रिय 'म'—

तुम्हारी दूसरी पत्रिका के लिए अनेकानेक धन्यवाद। यह निश्चय ही आश्चर्यजनक है। यह आयोजन नितान्त मौलिक है। किसी

महान आचार्य का जीवन-चरित्र बिना लेखक के मनोभावों की छाप पड़े हुए जनता के सामने कभी नहीं आया, पर तुम वैसा करके दिखा रहे हो। तुम्हारी शैली नवीन और निश्चित रूप की है, साथ ही सरल और स्पष्ट—मात्रा की प्रशंसा भी नहीं की जा सकती।

उसके पढ़ने से मुझे कितना हर्ष हुआ है मैं उसका यथार्थ शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। जब मैं उसे पढ़ता हूँ तो सचमुच हर्ष से उन्मत्त हो जाता हूँ। यह बात विचित्र है न ! हमारे गुरु व प्रभु इतने मौलिक थे कि हममें से प्रत्येक को भी मौलिकता प्रकट करनी पड़ेगी। अब मेरी समझ में आया कि उनके जीवन लिखने का प्रयत्न हममें से किसी ने क्यों नहीं किया। यह महान् कार्य तुम्हारे लिए सुरक्षित था। यह स्पष्ट है कि वे तुम्हारे संग हैं।

प्रेम और नमस्कार पूर्वक,
विवेकानन्द

पु०—सुक्राती वार्तालाप में प्लेटो ही प्लेटो की छाप है, परन्तु तुम स्वयं तो तो इनमें अदृश्य ही हो। उसका नाटकीय पहलू परम सुन्दर है। यहाँ और पश्चिम में दोनों जगह लोग इसे बहुत पसंद करते हैं।

(मुहम्मद सरफ़राज़ हुसैन को)

अलमोड़ा,
१० जून १८९८

प्रिय मित्र—

आपका पत्र मैंने आदर पूर्वक ग्रहण किया और मुझे यह जान

कर अति आनन्द हुआ कि श्री प्रभु चुपचाप हमारी मातृभूमि के लिए अभूतपूर्व बातों की तैयारी कर रहे हैं।

चाहे हम उसे वेदान्त कहें या और किसी नाम से पुकारें परन्तु सत्य तो यह है कि धर्म और विचार में अद्वैत ही अन्तिम शब्द है और केवल इसी दृष्टिकोण से सब धर्मों और सम्प्रदायों को प्रेम से देखा जा सकता है। हमें विश्वास है कि भविष्य के सभ्य मानवी समाज का यही धर्म है। अन्य जातियों की अपेक्षा हिन्दुओं को यह श्रेय प्राप्त होगा कि उन्होंने इसकी सर्वप्रथम खोज की। इसका कारण यह है कि वे अरबी और हीब्रू दोनों जातियों से अधिक प्राचीन हैं। परन्तु साथ ही व्यवहारिक अद्वैतवाद का—जो समस्त मनुष्य जाति को अपनी ही आत्मा का स्वरूप समझता है, तथा उसी के अनुकूल आचरण करता है—विकास हिन्दुओं में सार्वभौमिक भाव से होना अभी भी शेष है।

इसके विपरीत हमारा अनुभव यह है कि यदि किसी धर्म के अनुयायी व्यवहारिक जगत् के दैनिक कार्यों के क्षेत्र में, इस समानता को योग्य अंश में ला सके हैं तो वे इस्लाम और केवल इस्लाम के अनुयायी हैं—यद्यपि सामान्यतः जिस सिद्धान्त के अनुसार ऐसे आचरण का अवलम्बन है उसके गम्भीर अर्थ से वे अनभिज्ञ हैं जिसे कि हिन्दू साधारणतः स्पष्ट रूप से समझते हैं।

इसलिए हमें यह दृढ़ विश्वास है कि वेदान्त के सिद्धान्त कितने ही उदार और विलक्षण क्यों न हों, परन्तु व्यवहारिक इस्लाम की

सहायता के बिना, मनुष्य जाति के महान् जनसमूह के लिए वे मूल्यहीन हैं। हम मनुष्य जाति को उस स्थान पर पहुँचाना चाहते हैं जहाँ न वेद है, न बाईबल है, न कुरान; परन्तु वेद, बाईबल और कुरान के समन्वय से ही ऐसा हो सकता है। मनुष्य-जाति को यह शिक्षा देनी चाहिये कि सब धर्म उस धर्म के, उस एकमेवाद्वितीय के भिन्न भिन्न रूप हैं, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति इन धर्मों में से अपना मनोनुकूल मार्ग चुन सकता है।

हमारी मातृभूमि के लिए इन दोनों विशाल मतों का सामञ्जस्य —हिन्दुत्व और इस्लाम—वेदान्ती बुद्धि और इस्लामी शरीर—यही एक आशा है।

मैं अपने मानस-चक्षु से भावी भारत की उस पूर्णावस्था को देखता हूँ, जिसका इस विप्लव और संघर्ष से तेजस्वी और अजेय रूप में, वेदान्तिक बुद्धि और इस्लामी शरीर के संग उत्थान होगा।

प्रभु से सर्वदा मेरी यही प्रार्थना है कि वह आपको मनुष्य जाति की सहायता के लिए, विशेषतः हमारी अत्यन्त दरिद्र मातृभूमि के लिए, एक शक्ति-सम्पन्न यंत्र बनाये।

प्रेम से, आपका विवेकानन्द।

(श्रीमती सरला घोषाल बी. ए. को)

बेलूर मठ,
१६ अप्रैल १८९९

श्रीमती जी—,

आपका कृपापत्र पाकर मुझे अति हर्ष हुआ। यदि किसी ऐसे विषय के त्याग से, जिससे मुझे या मेरे गुरु-भाइयों को विशेष प्रेम हो, बहुत से सच्चे और शुद्ध-चित्त देश-भक्त हमारे कार्य में आकर सहायता करेंगे, तो विश्वास रखिये कि हम ऐसे त्याग से तनिक भी न झिझकेंगे, न एक भी आँसू की बून्द बहाएँगे—और यह हम अपने व्यवहार में चरितार्थ करके दिखा सकते हैं। परन्तु अभी तक ऐसे किसी व्यक्ति को सहायता करने के लिए अग्रसर होते हुए मैंने नहीं देखा। कुछ लोगों ने केवल अपने प्रिय व्यापार (Hobby) को हमारे से बदलने का प्रयत्न किया है—बस इतना ही है। यदि हमारे देश की अथवा मनुष्य-जाति की वास्तविक सहायता होती हो तो गुरु-पूजा त्यागने की क्या बात है, हम कोई भी घोर पाप करने को या ईसाइयों की अनन्तकाल तक नरकयातना भोगने को भी तैयार हैं। परन्तु मनुष्य का अध्ययन करते-करते मेरा सिर सफ़ेद हो गया है। यह संसार एक अत्यन्त दुःखप्रद स्थान है और बहुत दिनों से एक ग्रीक दार्शनिक के समान दीपक हाथ में लेकर मैंने घूमना आरम्भ कर दिया है। एक सर्वप्रिय गीत जो मेरे गुरु बहुधा गाते थे मुझे इस समय याद आ रहा है—

यह व्यक्ति जिससे अपना मन मिलता है
अपनी दृष्टि से वह पहचाना जाता है
ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है।........

इतना मेरी ओर से। कृपया यह जानिये कि इसमें एक शब्द की भी अतिशयोक्ति नहीं है—आप भी इसे यथार्थ रूप में पायेंगी।

परन्तु मुझे उन देशभक्तों पर कुछ सन्देह है जो हमारा साथ तभी देने को तैयार हैं जब हम अपनी गुरु-पूजा त्याग दें। अच्छा, यदि वे अपने देश की सेवा में सचमुच इतना उद्योग और परिश्रम कर रहे हैं कि प्रायः मृत-प्राय से हुए जाते हैं तो प्रश्न यह उठता है कि सिर्फ गुरु-पूजा की ही एक समस्या से उनका सारा काम कैसे रुक जाता है!

(श्रीमती ओल बुल को)

१२ दिसम्बर १८९९

प्रिय श्रीमती बुल,—

आपका कहना बिलकुल ठीक है; मैं निश्चय ही बड़ा कड़ा हूँ। और कोमलता आदि के विषय में—तो यह मेरा दोष है। अच्छा होता यदि इसकी मात्रा मुझमें कम होती, बहुत कम होती—यह मेरी दुर्बलता है और खेद है कि मेरे सब दुःखों का यही कारण है। म्युनिसिपैलिटी हम पर जबरदस्त कर लगाना चाहती है—खैर कोई

बात नहीं, मैंने मठ को एक ट्रस्ट बनाकर जनता की सम्पत्ति नहीं बना दी, यह मेरा ही दोष कहिये। मुझे बड़ा ही दुःख है कि अपने लड़कों के प्रति मैं कड़े वचनों का प्रयोग करता हूँ, परन्तु वे भी जानते हैं कि इस संसार में मैं ही उन सबसे अधिक प्रेम करता हूँ। मुझे दैवी सहायता मिली—सच है, परन्तु अरे, उस दैवी सहायता की एक-एक मात्रा ने मेरे रक्त-माँस से अपना मूल्य चुकाया। उसके बिना मैं अधिक सुखी और एक अधिक अच्छा मनुष्य होता। निश्चय ही, यह समय मुझे अन्धकारमय प्रतीत होता है, परन्तु मैं योद्धा हूँ, और लड़ते-लड़ते ही मरूँगा—हार न मानूँगा—इसलिए लड़कों से मैं उन्मत्त जैसा व्यवहार करता हूँ। मैं उनसे लड़ने को नहीं कहता परन्तु उनसे कहिये कि वे भी मुझे लड़ने से न रोकें।

मैं अपने भाग्य से द्वेष नहीं करता, परन्तु ओह! अब मुझे एक पुरुष की आवश्यकता है, कोई मेरे ही लड़कों में से, जो मेरे संग खड़े होकर प्रतिकूल विषयों से लड़ सके! आप अपने को उद्विग्न न होने दीजिये; यदि भारत में कुछ काम होना है तो मेरी उपस्थिति वहाँ आवश्यक है। मेरा स्वास्थ्य पहले से अच्छा है और कदाचित् समुद्र की वायु से और भी अच्छा हो जायगा। अपने मित्रों को कष्ट देने के अतिरिक्त मैंने अमेरिका में इस बार कुछ भी नहीं किया। सम्भव है कि श्रीमान जो (Joe) राह-खर्च के लिए मेरी कुछ सहायता कर दें और श्रीमान लेगेट के पास मेरा कुछ रुपया है। मुझे भारत में धन एकत्रित करने की अभी कुछ आशा है।

भारत के पृथक्-पृथक् भागों में मैं अपने किसी मित्र से नहीं मिला। मुझे पंद्रह हजार संग्रह करने की आशा है जिससे कि पचास हजार पूरा हो जायगा और ट्रस्ट-पत्र (Deed of Trust) द्वारा म्युनिसिपैलिटी का कर घट जायगा। मैं यह धन संग्रह न कर सका तो अमेरिका में निश्चेष्ट जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा उसके लिये उद्योग करके मरना अच्छा है। मुझसे त्रुटियाँ बहुत हुईं परन्तु प्रत्येक त्रुटि का कारण अत्यधिक प्रेम था। प्रेम से मुझे कैसा द्वेष है! मुझमें प्रेम का अल्पांश भी न होता तो अच्छा था। भक्ति! अरे! मैं चाहता हूँ कि मैं अद्वैतिन् होता, शान्त और हृदयहीन। अच्छा, अब यह जन्म तो हो चुका। अगले जन्म में मैं यत्न करूँगा। मुझे दुःख है, विशेषतः इस समय, कि मैंने अपने मित्रों को लाभ पहुँचाने की अपेक्षा उन्हें हानि अधिक पहुँचाई है। वह शान्ति और निस्तब्धता, जिसकी मैं खोज करता था, मैंने कभी न पाई।

कई वर्ष हुए, मैं हिमालय गया था—कभी वापस न आने के विचार से। वहाँ मुझे यह समाचार मिला कि मेरी बहिन ने आत्महत्या कर ली है और मेरे दुर्बल हृदय से शान्ति की आशा उसी समय गायब हो गई!! इस मेरे दुर्बल हृदय ने ही मुझे धक्का देकर भारत के बाहर निकाला जिससे मैं अपने प्रियजनों के लिए कुछ सहायता ढूँढ़ सकूँ, और मैं इस प्रकार यहाँ आया! शान्ति की खोज मैंने की, परन्तु हृदय ने, जो भक्ति का आसन है, मुझे शान्ति प्राप्त करने न दी। उद्योग और यंत्रणा, यंत्रणा और उद्योग! मेरा भाग्य है

तो ऐसा ही होने दो, और जितनी जल्दी मैं इसे पार कर सकूँ, अच्छा है। लोग कहते हैं कि मैं भावुक हूँ परन्तु परिस्थितियों को तो देखिये! मुझे दुःख है कि आपके मन को मैंने आघात पहुँचाया, विशेषतः आपको, जो मुझसे इतना प्रेम करती हैं और जिन्होंने मेरे ऊपर इतनी कृपा, अत्यन्त कृपा दिखाई है। परन्तु सच है कि ऐसा हुआ। अब मैं ग्रन्थि को काटूँगा या इस उद्योग में मर जाऊँगा।

सदैव आपका पुत्र,
विवेकानन्द

पु०—जैसा माँ चाहती हैं वैसा होने दो। मैं श्रीमती जो (Joe) से सैनफ्रैनसिस्को द्वारा भारत के राह-खर्च की भिक्षा माँगूगा। यदि वे दे देंगी तो मैं तुरन्त चल दूँगा और जापान होता हुआ जाऊँगा। एक मास लगेगा। मैं समझता हूँ कि ठीक-ठीक काम चलाने के लिए या उसे कुछ अच्छी तरह स्थापित करने के लिये—यदि और कुछ नहीं तो कम से कम गड़बड़ न मचने देने के लिए,—मैं भारत में कुछ रुपया एकत्रित कर सकूँगा। अन्त अन्धकारमय और अस्त व्यस्त होता जा रहा है; मैं भी ऐसा ही समझता था। यह न समझियेगा कि एक क्षण में ही मैं हार मान जाता हूँ। भगवान् आपका भला करे—यदि भगवान् ने मुझे अपना भाड़े का टट्टू बनाया है, रास्ते में काम करने और मरने के लिए, तो उन्हें ऐसा ही करने दो। मैं

आपका पत्र पाकर जितना प्रसन्न हुआ हूँ उतना कई वर्ष से नहीं हुआ—वाह गुरु की फतेह! गुरु की जय हो!! हाँ, संसार को आने दो, नरकों को आने दो, देवताओं को आने दो, जगदम्बा को आने दो। मैं लड़ता हूँ और हार नहीं मानता। रावण ने प्रभु से स्वयं लड़कर तीन जन्म में मुक्ति पा ली! माँ से विरोध यश-दायक है। आप को और आपके स्वजनों को सब प्रकार का आशीर्वाद। आपने मेरी योग्यता से अधिक मेरे लिए किया, बहुत ज्यादा।

क्रिस्टीन और तुरियानन्द को मेरा प्यार—

विवेकानन्द

(स्वामी अखण्डानन्दजी को)

कैलिफोर्निया,
२१ फरवरी १९००

प्रिय अखण्डानन्द—,

तुम्हारा पत्र पाकर और विस्तारपूर्वक सब समाचार पढ़कर मुझे अति हर्ष हुआ। विद्या और पाण्डित्य बाह्य आडम्बर हैं और बाह्य भाग में केवल चमक है, परन्तु सब शक्तियों का सिंहासन हृदय होता है। ज्ञानमय, शक्तिमय तथा कर्ममय आत्मा का निवासस्थान मस्तिष्क में नहीं वरन् हृदय में है। "शतं चैका च हृदयस्य नाड्यः"— हृदय की नाड़ियाँ एक सौ एक हैं इत्यादि। मुख्य नाड़ी का केन्द्र जिसे Sympathetic Ganglion कहते हैं, हृदय के निकट होता है;

और यही आत्मा का निवास-दुर्ग है। जितना अधिक तुम हृदय का विकास कर सकोगे, उतनी अधिक तुम्हारी विजय होगी। बुद्धि की भाषा तो कोई-कोई ही समझता है, परन्तु वह भाषा, जो हृदय से निकलती है उसे ब्रह्मा से लेकर घास के तिनके तक सभी समझ सकते हैं। परन्तु हमें अपने देश में तो ऐसे लोगों को जाग्रत करना है जो मृतप्राय हैं। इसमें समय लगेगा परन्तु यदि तुममें असीम धीरज और उद्योगशक्ति है तो सफलता तुम्हें निश्चित रूप से ही प्राप्त होगी। इसमें तनिक भी त्रुटि नहीं हो सकती।

अँग्रेज़ कर्मचारियों का क्या दोष है? क्या वे परिवार, जिनकी अस्वाभाविक निर्दयता के बारे में तुमने लिखा है, भारत में अनोखे हैं? या ऐसों की बाहुल्यता है? पूरे देश में यह एक ही कथा है। परन्तु यह स्वार्थपरता जो हमारे देश में साधारणतः पाई जाती है निरी दुष्टता का ही परिणाम नहीं है। यह पाशविक स्वार्थपरता शताब्दियों की निष्फलता और अत्याचार का फल है। यह वास्तविक स्वार्थपरता नहीं है परन्तु अगाध नैराश्य है। सफलता के पहले झोंके में यह शान्त हो जायगा। अँग्रेज कर्मचारी चारों ओर इसी को देखते हैं इसीलिए उन्हें आरम्भ से ही विश्वास कैसे हो सकता है? परन्तु, मुझे यह बताओ कि जब सच्चा कार्य वे प्रत्यक्ष देखते हैं तो वे क्या सहानुभूति नहीं प्रकट करते?........

इन उग्र दुर्भिक्ष, जल-प्रलय, रोग और महामारी के दिनों में कहो तुम्हारे कांग्रेस वाले कहाँ हैं। क्या यह कहना पर्याप्त होगा कि

"राज शासन हमारे हाथ में देदो?" और उनकी सुनेगा भी कौन? यदि मनुष्य काम करता है तो क्या उसे अपना मुख खोल कर कुछ माँगना पड़ता है? यदि तुम्हारे जैसे दो सहस्र लोग कई जिलों में काम करते हों तो क्या राजनैतिक आन्दोलन के विषय में अँग्रेज स्वयं अपनी बारी में तुमसे सम्मति नहीं लेंगे! स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः—"बुद्धिमान् मनुष्य को अपना कार्य स्वयं पूर्ण करना चाहिये".... ए—को केन्द्र खोलने की आज्ञा नहीं मिली परन्तु इससे क्या? क्या किशनगढ़ ने नहीं मान लिया? उसे चुपचाप काम करने दो, किसी से कुछ कहने की या विवाद करने की आवश्यकता नहीं है। जो जगज्जननी के इस कार्य में सहायता करेगा उस पर उनकी कृपा होगी, और जो उसका विरोध करेगा वह केवल—अकारणाविष्कृत वैर-दारुणः—अकारण ही दारुण वैरी का आविष्कार ही न करेगा, वरन् अपने भाग्य पर भी कुठाराघात करेगा। शनैः पन्थाः इत्यादि, सब अपने समय पर होगा। बूँद-बूँद से घड़ा भरता है। जब कोई बड़ा काम होता है, जब नींव पड़ती है, या मार्ग बनता है, जब दैवी शक्ति की आवश्यकता होती है—तब एक या दो असाधारण मनुष्य विघ्न और कठिनाइयों के पहाड़ को पार करते हुए चुपचाप और शान्ति से काम करते हैं। जब सहस्रों मनुष्यों का लाभ होता है, तब बड़ा कोलाहल मचता है और पूरा देश प्रशंसा से गूँज उठता है। परन्तु तब तक वह यंत्र तीव्रता से चल चुका होता है, और कोई लड़का भी उसे चलाने का सामर्थ्य रखता है, या कोई भी मूर्ख उनकी गति में वृद्धि कर सकता है। इसे गाँठ में बाँधलो कि

एक या दो गाँवों का ही जो उपकार हुआ है, वह अनाथालय जिसमें बीस-पचीस अनाथ ही हैं, तथा वे ही दस-बीस कार्यकर्ता नितान्त पर्याप्त हैं। ये ही वह एक केन्द्र है जो कभी नष्ट होने का नहीं। यहाँ से लाखों मनुष्यों को समय पाकर लाभ पहुँचेगा। अभी हमको आधे दर्जन सिंह चाहिये, उसके बाद सैकड़ों गीदड़ भी उत्तम काम कर सकेंगे।

यदि अनाथ बालिकाएँ तुम्हारे आश्रय में किसी प्रकार आजायँ, तो तुम उन्हें सबसे पहले ले लेना। नहीं तो ईसाई मिशनरी उन बिचारियों को ले जायेंगे। यदि तुम्हारे पास उनके लिए विशेष प्रबन्ध नहीं है तो इसकी क्या चिन्ता ? जगज्जननी की इच्छा से उनका प्रबन्ध हो जायगा। जब तुम्हें घोड़ा मिले तो चाबुक की चिन्ता न करो।........अभी तुम्हें जो मिले उसे लेलो, अभी चुनाव-छँटाव न करना—अपने समय पर सब चीजें ठीक हो जायँगी। प्रत्येक उद्योग में विघ्नों का सामना करना पड़ता है, परन्तु धीरे-धीरे मार्ग सुगम हो जाता है।

अँग्रेज कर्मचारी को मेरी ओर से बहुत-बहुत धन्यवाद का संदेसा देना। निर्भय होकर काम करो—कैसे वीर हो ! शाबाश ! खूब अच्छा कार्य किया ! भागलपुर में केन्द्र खोलने का जो तुमने लिखा है, वह विचार—विद्यार्थियों को शिक्षा देना इत्यादि—निस्सन्देह बहुत अच्छा है, परन्तु हमारा संघ दीन-हीन, दरिद्र, निरक्षर किसान तथा श्रमिक समाज के लिए है, और उनके लिए

सब कुछ करने के बाद, समय बचेगा, तब केवल कुलीनों की बारी आएगी। प्रेम द्वारा तुम उन किसान और श्रमिक लोगों को जीत सकोगे। इसके पश्चात् वे स्वयं थोड़ा सा धन संग्रह करके अपने गाँव में ऐसे ही संघ बनाएँगे, और धीरे-धीरे उन्हीं लोगों में शिक्षक पैदा हो जाएँगे।

कुछ ग्रामीण लड़के व लड़कियों को विद्या के आरम्भिक सिद्धांत सिखा दो, और अनेक विचार उनकी बुद्धि में बिठा दो। इसके बाद प्रत्येक ग्राम के किसान रुपया जमा करके अपने-अपने ग्रामों में एक एक संघ स्थापित करेंगे। उद्धरेदात्मनात्मानम्—"अपनी आत्मा का अपने उद्योग से उद्धार करो"। यह सब परिस्थितियों में लागू होता है। हम उनकी वह सहायता करते हैं जिससे वे स्वयं अपनी सहायता कर सकें। वे तुम्हें प्रति दिन का भोजन प्राप्त करा देते हैं। यही इस बात का द्योतक है कि कुछ यथार्थ कार्य हुआ है। जिस क्षण उन्हें अपनी अवस्था का ज्ञान हो जायगा, और वे सहायता और उन्नति की आवश्यकता को समझेंगे तब जानना कि तुम्हारा प्रभाव पड़ रहा है, और तुम ठीक रास्ते पर हो। धनवान श्रेणी के लोग दया से गरीबों के लिए जो थोड़ी सी भलाई करते हैं, वह स्थायी नहीं होती और अन्त में दोनों पक्षों को हानि पहुँचाती है। किसान और श्रमिक समाज मरणासन्न अवस्था में हैं, इसलिए जिस चीज़ की आवश्यकता है वह यह है कि धनवान उन्हें अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त करने में सहायता दें और कुछ नहीं। फिर किसानों व मजदूरों

को अपनी समस्याओं का सामना और समाधान स्वयं करने दो। परन्तु तुम्हें सावधान रहना चाहिये कि गरीब किसान मजदूर और धनवानों में परस्पर कहीं जाति-विरोध का बीज न पड़ जाय। यह ध्यान रखो कि धनिकों के प्रति दुर्वचन न कहो—स्वकार्यमुद्धरेत्प्राज्ञः "ज्ञानी मनुष्य को अपना कार्य अपने उद्योग से करना चाहिये"।

गुरु की जय हो! जगज्जननी की जय हो! भय क्या है! अवसर, औषधि तथा इसका उपयोग स्वयं ही आ उपस्थित होंगे। मैं परिणाम की चिन्ता नहीं करता, चाहे अच्छा हो या बुरा। इतना काम यदि तुम करोगे तो मुझे हर्ष होगा। वाद-प्रतिवाद, मूल-वाक्य, शास्त्र, धार्मिक मत और सिद्धान्त—इनसे मैं अपनी इस बढ़ती हुई उम्र में विष की तरह द्वेष करता हूँ। यह निश्चित रूप से जानो कि जो काम करेगा वह मेरे सिर का मुकुट होगा। व्यर्थ शब्दों का विवाद और शोर मचाना, यह हमारा समय नष्ट कर रहा है, और हमारी जीवन-शक्ति को क्षीण कर रहा है और मनुष्य-जाति के कल्याण के लिए एक पग भी हमें आगे न बढ़ाएगा। "माभैः" "डरो मत" शाबाश! निश्चय ही तुम वीर हो। श्रीगुरु तुम्हारे हृदय-सिंहासन पर स्थित रहें और जगज्जननी तुम्हें मार्ग प्रदर्शन करें!

प्रेमपूर्वक तुम्हारा—विवेकानन्द

(एक अमेरिकन मित्र को)

अलमेड़ा कैलिफ़ॉर्निया,
१२ अप्रैल १९००

माँ फिर से अनुकूल हो रही हैं। कार्य अब सफल हो रहे हैं ऐसा होना ही था।

कर्म के संग दोष अवश्य होता है। मैंने उस संचित दोष का मूल्य बुरे स्वास्थ्य के रूप में चुकाया है। मैं प्रसन्न हूँ, उससे मेरे मन को लाभ है। जीवन में अब एक शान्ति और कोमलता है जो पहले नहीं थी। मैं अब आसक्ति और उसके संग-संग अनासक्ति दोनों सीख रहा हूँ, और अपने मन द्वारा अपना स्वामी बनना सीख रहा हूँ........

माँ अपना काम कर रही हैं; मैं अब अधिक चिन्ता नहीं करता। प्रति क्षण मेरे समान सहस्रों पतंगे मरते हैं। उनका काम उसी प्रकार चलता रहता है। माँ की जय हो!........माँ की इच्छा के प्रवाह में अकेला बहना, यही मेरा सम्पूर्ण जीवन रहा है। जिस समय मैंने इसे तोड़ने का यत्न किया है उसी समय मैंने कष्ट पाया है। उनकी इच्छा पूरी हो!....

मैं आनन्द से हूँ और अपने मन में शान्त हूँ, पहले की अपेक्षा मैं अब अधिक रूप में संन्यासी हूँ। अपने सगे-सम्बन्धियों का प्रेम दिन-दिन घट रहा है, और माँ का प्रेम बढ़ रहा है। दक्षिणेश्वर में वटवृक्ष के नीचे श्रीरामकृष्ण के संग रात्रि-जागरण की स्मृतियाँ एक बार फिर से जाग्रत हो रही हैं। और काम? काम क्या है? किसका काम? किसके लिए मैं काम करूँ?

मैं स्वतंत्र हूँ। मैं माँ का बालक हूँ। वही काम करती हैं, वही खेलती हैं। मैं क्यों संकल्प बनाऊँ? मैं क्या संकल्प बनाऊँ? बिना

मेरे संकल्प के सांसारिक पदार्थ आते और जाते हैं जैसी माँ की इच्छा होती है। हम उसके यंत्र हैं वह हमें कठपुतली की तरह नचाती हैं।

(कुमारी जोज़फीन मैक्लाउड को)

अलमेड़ा कैलिफोर्निया,
१८ अप्रैल १९००

प्रिय जो—

अभी मुझे आपका वह श्रीमती बुल का मन प्रसन्न करने वाला पत्र मिला। मैं इसे लन्दन भेज रहा हूँ। यह जान कर कि श्रीमती लेगेट का स्वास्थ्यलाभ निश्चित है, मुझे अति हर्ष हुआ।

मुझे बड़ा दुःख है कि श्रीमान लेगेट ने सभापति के पद का त्याग कर दिया है। अच्छा, कहीं मैं और झगड़ा न बढ़ा दूँ इससे डर कर मैं चुप हूँ। आप जानती हैं कि मेरी विधि बड़ी कठोर होती है और एक बार उत्तेजित होने से कदाचित् मैं बहुत कुछ कह जाऊँ जो वह सहन न कर सके।

मैंने उन्हें केवल यह बतलाने को लिखा कि श्रीमती बुल के सम्बन्ध में उनके विचार सर्वथा अन्यायपूर्ण हैं।

कर्म करना हमेशा कठिन होता है। जो! मेरे लिए प्रार्थना करो कि मेरा काम सदा के लिए बंद हो जाय और मेरे प्राण माँ में लीन हो जायें। अपना काम माँ ही जानती हैं।

एक बार पुनः लन्दन आकर तुम आनन्दित होगी—वे पुराने मित्र—उन सब को मेरी कृतज्ञता और प्रेम कहना।

मैं स्वस्थ हूँ, मन से अत्यन्त स्वस्थ हूँ। मैं शारीरिक विश्राम की अपेक्षा आत्मविश्राम का अधिक अनुभव करता हूँ। संग्राम में जय-पराजय होती है। मैंने अपनी गठरी बनायी है और महा मुक्तिदाता की बाट जोह रहा हूँ।

"शिव, हे शिव, मेरी नैया को पार लगा दे"।

जो (Joe): अब मैं वही बालक हूँ जो विस्मय और विभोर भाव से दक्षिणेश्वर में पंचवटी के नीचे बैठ कर श्रीरामकृष्ण के अद्भुत वचनों को सुनता था। यह मेरा असली स्वभाव है; कर्म, उद्योग, परोपकार इत्यादि ये सब ऊपरी बातें थीं। अब मैं फिर उनकी वाणी सुन रहा हूँ—वही पुरानी आवाज़ जो मेरे अन्तःकरण को रोमांचित कर देती थी। बंधन टूट रहे हैं—प्रेम का दीपक बुझ रहा है, कर्म रसहीन हो रहा है—जीवन का आकर्षण मंद पड़ रहा है। अब केवल प्रभु की आवाज़ सुनाई दे रही है—"मैं आया,—प्रभु मैं आया।" "मृतकों को मृतकों की अन्त्येष्टि-क्रिया करने दो, तुम मेरे अनुगामी बनो।" "मैं आता हूँ, मेरे प्राण-वल्लभ! मैं आता हूँ।"

हाँ, मैं आता हूँ। निर्वाण मेरे सामने है। उस शान्ति के अनन्त सागर का, जहाँ न पानी की हिलोरे हैं, न हवा की थपकियाँ—मैं कभी कभी उसका अनुभव करता हूँ।

मुझे हर्ष है कि मैंने जन्म लिया, हर्ष है कि मैंने कष्ट उठाया, हर्ष है कि मैंने बड़ी-बड़ी भूलें कीं, और हर्ष है कि शान्ति में प्रवेश कर रहा हूँ। मैं किसी को बंधा हुआ नहीं छोड़ कर जाता, न मैं कोई बंधन ले जा रहा हूँ। चाहे इस शरीर की मृत्यु से मुझे मुक्ति मिले, या शरीर को रहते हुए मुक्त होजाऊँ, वह पहला मनुष्य चला गया, सदा के लिए चला गया और कभी वापस नहीं आएगा।

वह गुरु, वह नायक, वह शिक्षक जा चुके; वह बालक, वह विद्यार्थी, वह दास पीछे रह गया है।

तुम समझती हो कि मैं—विषय में हस्तक्षेप नहीं करना चाहता। मैं कौन हूँ किसी के संग हस्तक्षेप करनेवाला जो (Joe)? मैंने नेता का अपना स्थान बहुत दिनों से त्याग दिया—मुझे अब बोलने का अधिकार नहीं है। इस वर्ष के आरम्भ से मैंने भारत में कोई आदेश नहीं दिया। तुम यह जानती हो। तुमने और श्रीमती बुल ने भूतकाल में जो कुछ मेरे लिए किया उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। सब आशीर्वाद सदा तुम्हारे संग रहेगा। जब मैं प्रवाह में बहता था वे मेरे जीवन के सब से मधुर क्षण थे। मैं फिर बह रहा हूँ—ऊपर उज्ज्वल और उष्ण सूर्य है और चारों ओर वनस्पति की बाहुल्यता—गर्मी में सब चीजें निस्तब्ध और शान्त हैं—अलसाई

हुई गति से नदी के गरम हृदय-पट पर मैं बह रहा हूँ। यह अद्भुत निस्तब्धता, ऐसी निस्तब्धता जिससे विश्वास होता है कि यह भ्रम है—इसके नष्ट होने के डर से मैं हाथ पैर नहीं चलाता।

मेरे कर्म के पीछे महत्वाकांक्षा थी, प्रेम के पीछे व्यक्तित्व, पवित्रता के पीछे भय और मेरे पथ-प्रदर्शन के पीछे शक्ति की लालसा। वे अब लोप हो रहे हैं और मैं बह रहा हूँ। मैं आता हूँ। माँ, मैं तुम्हारी स्नेहमयी गोद में आता हूँ, जहाँ तुम ले जाओगी वहीं बहता हुआ मैं आता हूँ, उस शब्दहीन अपरिचित और विचित्र देश में; नाटक का पात्र होकर नहीं—दर्शक बनकर आता हूँ।

अरे, कितनी शान्ति है! हृदय के अन्तस्थल में मेरे विचार दूर से, बड़ी दूर से आते हुए मालूम होते हैं। वे निस्तेज, दूर के, धीमे स्वर में बोले हुए शब्द के समान जान पड़ते हैं और सब चीज़ों पर शान्ति छाई हुई है, मधुर, मधुमयी शान्ति—जैसे सोने से पहले दो चार क्षण के लिए अनुभव होती है, जब सब चीजें दिखती हैं पर छाया-मात्र विदित होती हैं—बिना डर के, बिना प्रेम के, और बिना भाव के।—शान्ति, जो चित्र और मूर्तियों से घिरे हुए, अकेले में अनुभव होती है।—मैं आया, प्रभु, मैं आया।

बस यह संसार है—न सुन्दर, न भद्दा—भावहीन इन्द्रियजनित ज्ञान के समान। अरी जो (Joe), उस परमानन्द को कैसे कहूँ! सब वस्तुएँ सुन्दर और शिव हैं; सब वस्तुएँ मेरे लिए अपना व्यवहारिक

(Relative) सम्बन्ध खो रही हैं—जिसमें प्रथम मेरा शरीर है। ॐ तत् सत्!

मुझे आशा है कि लन्दन और पैरिस में तुम सब के लिए बड़ी बड़ी बातें होंगी। नये आनन्द—मन और शरीर के नये लाभ।

तुम्हें और श्रीमती बुल को सदा की भाँति मेरा प्रेम—

तुम्हारा शुभचिन्तक

विवेकानन्द

(श्रीमती मृणालिनी बसु को)

देवघर, वैद्यनाथ,

बाबू प्रियनाथ मुखर्जी द्वारा

२३ दिसम्बर १९००

प्रिय माँ—

आपका पत्र पाकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। आप जो समझी हैं वह ठीक है। स ईशोऽनिर्वचनीय प्रेमस्वरूपः "ईश्वर अनिर्वचनीय प्रेम का स्वरूप है।" नारद द्वारा वर्णन किया हुआ ईश्वर का यह लक्षण स्पष्ट है और सब लोगों को स्वीकार है, यह मेरे जीवन का दृढ़ विश्वास है। बहुत से व्यक्तियों के समूह को समष्टि कहते हैं और प्रत्येक व्यक्ति व्यष्टि कहलाता है। आप और मैं—दोनों व्यष्टि हैं, समाज समष्टि है। आप और मैं—पशु, पक्षी, कीड़ा,

कीड़े से भी तुच्छ प्राणी, वृक्ष, लता, पृथ्वी, नक्षत्र और तारे यह प्रत्येक व्यष्टि हैं और यह विश्व समष्टि है, जो कि वेदान्त में विराट, हिरण्यगर्भ या ईश्वर कहलाता है; पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, देवी इत्यादि। व्यष्टि को व्यक्तिशः स्वतंत्रता होती है या नहीं, और यदि होती है तो उसका नाम क्या होना चाहिये, व्यष्टि को समष्टि के लिए अपनी इच्छा और सुख का सम्पूर्ण त्याग करना चाहिये या नहीं,—ये प्रत्येक समाज के लिए चिरन्तन समस्याएँ हैं। सब स्थानों में समाज इन समस्याओं के समाधान में संलग्न रहता है। ये बड़ी-बड़ी तरङ्गों के समान आधुनिक पश्चिमी समाज में हलचल मचा रही हैं। जो समाज के आधिपत्य के लिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता का त्याग चाहता है वह सिद्धान्त समाजवाद कहलाता है और जो व्यक्ति के पक्ष का समर्थन करता है वह व्यक्तिवाद कहलाता है।

समाज का व्यक्ति पर निरन्तर शासन तथा संस्था एवं नियम-बद्धता द्वारा बलपूर्वक आत्मत्याग, और इसके परिणाम तथा फल का ज्वलन्त उदाहरण—यही हमारी मातृ-भूमि है। इस देश में शास्त्रीय आज्ञानुसार मनुष्य जन्म लेते हैं, जन्म-पर्यंत वह नियुक्त विधि से खाते पीते हैं, और विवाह और विवाह सम्बन्धी कार्य भी इसी प्रकार करते हैं, यहाँ तक कि शास्त्रों के नियमानुसार वे मरते भी हैं। एक विशेष गुण को छोड़कर यह कठिन नियमबद्धता दोषों से परिपूर्ण है। गुण यह है कि बहुत थोड़े यत्न से मनुष्य एक या दो काम अति उत्तम रीति से कर सकते हैं, क्योंकि कई पीढ़ियों से उस काम

का दैनिक अभ्यास है। जो स्वादिष्ट शाक और चावल इस देश के रसोइया तीन मिट्टी के ढेले और कुछ लकड़ियों की सहायता से तैयार कर सकते हैं वह और कहीं नहीं मिल सकता। बहुत ही प्राचीन समय के एक रुपये मूल्य के करघे जैसे सरल यंत्र की सहायता से पैर गड्ढे में रखकर २०) गज के किनखाब बनाना केवल इसी देश में सम्भव हो सकता है। एक फटा टाट और अंडी के तेल से जलाया हुआ मिट्टी का दीया—ऐसे पदार्थों की सहायता से केवल इस देश में अद्भुत विद्वान उत्पन्न होते हैं। कुरूप और विकृत पत्नि के प्रति असीम सहनशीलता, तथा दुष्ट और अयोग्य पति के प्रति आजन्म भक्ति, यह भी इसी देश में सम्भव है। यह तो हुआ चमकीला पहलू।

परन्तु यह काम वे लोग करते हैं जिनका जीवन निर्जीव यंत्र के समान व्यतीत होता है। उनमें मानासिक क्रिया नहीं है, उनके हृदय का विकास नहीं होता, उनके जीवन स्पन्दनहीन हैं, आशा का प्रवाह बंद है; उनमें इच्छाशक्ति की कोई प्रबल उत्तेजना नहीं है, सुख का चोखा अनुभव नहीं है, न प्रचण्ड दुःख ही उन्हें स्पर्श करता है; इनकी प्रतिभाशाली बुद्धि में निर्माण शक्ति कभी हलचल नहीं मचाती, नवीनता की कोई अभिलाषा नहीं है, और न नई वस्तुओं का कोई गुणग्रहण ही है; उनके मन के बादल कभी नहीं हटते, सूर्योदय का ज्योतिर्मय चित्र उनके हृदय को कभी मोहित नहीं करता। उनके मन में यह कभी नहीं आता कि इससे अच्छी भी कोई अवस्था

हो सकती है, यदि ऐसा विचार आता भी है तो विश्वास नहीं होता, विश्वास होता है तो यत्न की कमी रह जाती है। और यत्न होने पर उत्साह का अभाव उसे मार देता है।

यदि यह निश्चित है कि नियम से रहने से प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, यदि परम्परा से चली आई हुई प्रथा को कठोरता से पालन करना पुण्य है, तब बताइये कि वृक्ष से बढ़कर पुण्यात्मा कौन हो सकता है, और रेलगाड़ी से बढ़कर भक्त और पवित्र महात्मा कौन है ! किसने पत्थर के टुकड़े को प्रकृति का नियम उल्लंघन करते हुए देखा ! किसने गाय भैंस को पाप करते हुए जाना !

विशाल जहाज और बलवान रेल का इंजिन बुद्धिहीन हैं, वे हिलते हैं और चलते हैं परन्तु उनमें बुद्धि नहीं है। और वह जो दूर से नन्हा सा कीड़ा अपने जीवन की रक्षा के लिए रेल की पटरी से हट गया वह क्यों बुद्धिमान है ? यंत्र में इच्छाशक्ति का कोई प्रकाश नहीं है। यंत्र कभी नियम को उल्लंघन करने की कोई इच्छा नहीं रखता। कीड़ा नियम का विरोध करना चाहता है, और नियम के विरुद्ध जाता है, चाहे उस प्रयत्न में वह सिद्धि प्राप्त करे या असिद्धि; इसलिए वह बुद्धिमान है। जिस अंश में इच्छाशक्ति के प्रकट होने में सफलता होती है, उसी अंश में सुख अधिक होता है और जीव उतना ही ऊंचा होता है। परमात्मा की इच्छाशक्ति पूर्णरूप से सफल होती है इसलिए वह उत्तम है।

शिक्षा क्या है? क्या वह पुस्तक विद्या है? नहीं! क्या वह नाना प्रकार का ज्ञान है? नहीं, यह भी नहीं। जिस संयम द्वारा इच्छाशक्ति का प्रवाह और विकास वश में लाया जाता है, और वह फलदायक होता है, वह शिक्षा कहलाती है। अब सोचिये कि शिक्षा क्या वह है जिसने निरन्तर इच्छाशक्ति को बलपूर्वक पीढ़ी दर पीढ़ी रोककर प्रायः नष्ट कर दिया है, जिसके प्रभाव से नए विचारों की तो बात ही जाने दीजिये—पुराने विचार भी एक-एक करके लोप होते चले जा रहे हैं, क्या वह शिक्षा है जो मनुष्य को धीरे-धीरे यंत्र बना रही है? जो स्वगामी यंत्र के समान सुकर्म करता है, उसकी अपेक्षा अपनी स्वतंत्र इच्छाशक्ति और बुद्धि के बल से अनुचित कर्म करने वाला, मेरे विचार से धन्य है। जो मनुष्य मिट्टी के पुतले, निर्जीव यंत्र या पत्थरों के ढेर के सदृश हो क्या उनका समूह समाज कहला सकता है? इस प्रकार का समाज कैसे उन्नत हो सकता हं? यदि कल्याण सम्भव होता तो सैकड़ों वर्षों से दास होने के बदले हम पृथ्वी के सब से प्रतापी राष्ट्र होते, और यह भारतभूमि मूर्खता की खान होने के बदले, विद्या के अनन्त स्रोत का उत्पत्ति-स्थान होती।

तब क्या आत्मत्याग एक गुण नहीं है? बहुतों के सुख के लिए, एक आदमी के सुख को बलिदान करना क्या सर्वश्रेष्ठ पुण्यकर्म नहीं है? अवश्य है, परन्तु बंगला कहावत के अनुसार "क्या घिसने और रगड़ने से सुन्दरता उत्पन्न हो सकती है? क्या यत्न

और दबाव से प्रेम प्रकट हो सकता है?" जो सदैव ही भिखारी है उसके त्याग में क्या गौरव? जिसे इन्द्रिय-बल न हो उसके इन्द्रिय-संयम में क्या गुण? जिसमें विचार का अभाव हो, हृदय का अभाव हो, उच्च अभिलाषा का अभाव हो, जिसमें समाज स्थापित कैसे होता है इस कल्पना का भी अभाव हो, उसका आत्मत्याग ही क्या हो सकता है? विधवा को बलपूर्वक सती करवाने में उसकी क्या पति-भक्ति प्रकट होती है? कुसंस्कारों की शिक्षा देकर लोगों से पुण्य कर्म क्यों करवाते हो? मैं कहता हूँ—मुक्त करो; जहाँ तक हो सके लोगों के बंधन खोल दिए जायँ। क्या गन्दगी से गन्दगी धुल सकती है? क्या बंधन को बंधन से हटा सकते हैं? ऐसा उदाहरण कहाँ है? जब तुम सुख की कामना समाज के लिए त्याग सकोगे तब तुम भगवान् बुद्ध बन जाओगे, तब तुम मुक्त हो जाओगे; परन्तु वह दिन दूर है। पुनः क्या आप समझती हैं कि अत्याचार द्वारा वह प्राप्त हो सकता है? "अरे, हमारी विधवाएँ आत्मत्याग का कैसा उदाहरण होती हैं! बालविवाह कैसा मधुर होता है! ऐसी कोई दूसरी प्रथा हो सकती है? ऐसे विवाह में पति-पत्नी में प्रेम को छोड़कर अन्य कोई भाव हो सकता है!!" दबी आवाज़ से यह विलाप चारों ओर से सुनाई देता है। परन्तु पुरुषों को, जिन्हें इस अवस्था में प्रमुख प्राप्त है, आत्म-संयम की आवश्यकता नहीं! दूसरों की सेवा से बढ़कर कोई गुण हो सकता है? परन्तु यह तर्क ब्राह्मणों को लागू नहीं है—दूसरे लोग उसे करें! सच तो यह है कि इस देश में माता पिता और सम्बन्धी अपने स्वार्थ के लिए, और

समाज के साथ एक प्रकार समझौता करके स्वयं को बचाने के लिए, अपनी सन्तान तथा दूसरों के कल्याण को निष्ठुरता पूर्वक बलिदान कर देते हैं और पीढ़ियों-से चली आनेवाली ऐसी शिक्षा ने उनके मन को ऐसा थोथा बना दिया है कि यह कार्य बहुत आसानी से हो जाता है। जो वीर है वही सचमुच आत्मत्याग कर सकता है। कायर, कोड़े के डर से, एक हाथ से आँसू पोंछता है और दूसरे हाथ से दान देता है। ऐसे दान का क्या उपयोग ? विश्वव्यापी प्रेम इससे बहुत दूर है। छोटे पौधों को चारों ओर से रूँधकर सुरक्षित रखना चाहिये। यदि एक पात्र से निस्स्वार्थ प्रेम करना सीखा जाय तो यह आशा की जा सकती है कि धीरे-धीरे विश्व-व्यापी प्रेम उत्पन्न हो जायगा। यदि एक विशेष इष्ट देवता की भक्ति प्राप्त हो सकती है तो सर्वव्यापक विराट से धीरे-धीरे प्रेम उत्पन्न होना सम्भव है।

इसलिए जब हम एक व्यक्ति के लिए आत्मत्याग कर सकेंगे, तब समाज के लिए आत्मत्याग की चर्चा करनी चाहिये, उससे पहले नहीं। सकाम कर्म द्वारा निष्काम कर्म का मार्ग प्राप्त होता है। आरम्भ से यदि कामना न होती तो उसका त्याग कैसे होता ? और उसका अर्थ भी क्या होता ? यदि अंधकार न होता तो प्रकाश का क्या अर्थ हो सकता था ?

आसक्त सकाम उपासना पहले आती है। छोटे की उपासना से आरम्भ करो, बड़े की उपासना स्वयं आजायगी।

माँ, चिन्तित न होइये। प्रबल वायु बड़े वृक्षों से टकराती है। "अग्नि को खुरेदने से वह अधिक प्रज्वलित होती है।" "साँप को सिर पर मारने से वह अपना फन उठाता है" इत्यादि। जब हृदय में पीड़ा उठती है, जब शोक की आँधी चारों ओर से घेर लेती है, जब मालूम होता है कि प्रकाश फिर कभी न होगा, जब आशा और साहस का प्रायः लोप हो जाता है, तब इस भयंकर आध्यात्मिक तूफ़ान में ब्रह्म की अन्तर्ज्योति चमक उठती है। वैभव की गोद में पला हुआ, फूलों में पोसा हुआ, जिसने कभी एक आँसू भी नहीं बहाया, ऐसा कोई व्यक्ति कभी बड़ा हुआ है, उसका अन्तर्निहित ब्रह्मभाव कभी व्यक्त हुआ है? आप रोने से क्यों डरती हैं? रोना न छोड़िये! रोने से नेत्रों में निर्मलता आती है और शुद्ध बुद्धि जाग्रत होती है। उस समय भेद की दृष्टि—मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि धीरे-धीरे लोप होने लगते हैं और सब स्थानों में और सब वस्तुओं में, अनन्त ब्रह्म की अनुभूति होने लगती है। तब—

सम पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

"सर्वत्र ही सम भाव में ईश्वर को उपस्थित देखकर वह आत्मा को आत्मा से हानि न पहुँचाकर परम गति को प्राप्त करता है।"

सदैव आपका शुभचिन्तक विवेकानन्द

(स्वामी स्वरूपानन्दजी को)

गोपाल लाल विला,
बनारस छावनी,
९ फरवरी १९०२

प्रिय स्वरूप—

....चारू के पत्र के उत्तर में उससे कहना कि ब्रह्मसूत्र का वह स्वयं अध्ययन करे। उसका यह कहने से क्या अभिप्राय है कि ब्रह्म-सूत्रों में बौद्ध मत का संकेत है? निश्चय ही उसका मतलब भाष्य से होगा—होना चाहिये, और शङ्कराचार्य केवल अन्तिम भाष्यकार थे; हाँ, बौद्ध साहित्य में भी वेदान्त का कहीं कहीं उल्लेख है और बौद्धों का महायान मत अद्वैत वादी भी है। अमरसिंह नाम के एक बौद्ध ने बुद्ध के नामों में अद्वयवादी का नाम क्यों दिया था? चारू लिखता है कि ब्रह्म शब्द उपनिषद् में नहीं आता है! वाह!!

बौद्ध धर्म के दोनों मतों में मैं महायान को अधिक प्राचीन मानता हूँ। माया का सिद्धान्त ऋक् संहिता के समान प्राचीन है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में "माया" शब्द का प्रयोग होता है। इस उपनिषद् को कम से कम मैं बौद्ध धर्म से प्राचीन मानता हूँ।

बौद्ध धर्म के विषय में मुझे कुछ दिनों से बहुत सा ज्ञान हुआ है। मैं इसका प्रमाण देने को तैयार हूँ कि (१) शिव-उपासना अनेक रूपों में बौद्धमत से पहले स्थापित थी, और बौद्धों ने शैवों के तीर्थस्थानों को लेने का प्रयत्न किया, परन्तु असफल होने पर उन्होंने

उन्हीं के निकट नए स्थान बनाए, जैसे कि बोध गया और सारनाथ में पाए जाते हैं। (२) अग्निपुराण में गयासुर की कथा का बुद्ध से सम्बन्ध नहीं है—जैसा कि डा० राजेन्द्र लाल मानते हैं—परन्तु उसका सम्बन्ध केवल पहले से ही वर्तमान एक कथा से है। (३) बुद्ध देव गयाशीर्ष पर्वत पर रहने गए इससे यह प्रमाण मिलता है कि वह स्थान पहले से ही था।

(४) गया पहले से ही पूर्वजों की उपासना का स्थान बन चुका था, और बौद्धों ने अपनी चरण-चिन्ह उपासना में हिन्दुओं का अनुकरण किया है।

(५) प्राचीन से प्राचीन पुस्तकें भी यह प्रमाणित करती हैं कि बनारस शिवपूजा का बड़ा स्थान था; इत्यादि इत्यादि।

बोध गया से और बौद्ध साहित्य से मैंने बहुत सी नई बातें जानी हैं। चारू से कहना कि वह स्वयं पढ़े तथा मूर्ख मतों से प्रभावित न हो।

मैं यहाँ, बनारस में अच्छा हूँ और यदि मेरा इस प्रकार स्वास्थ्य सुधरता जायगा तो मुझे बड़ा लाभ होगा।

बौद्ध धर्म के नव-हिन्दूधर्म सम्बन्ध के विषय में मेरे विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। उस संकेत ज्ञान को निश्चित रूप देने के लिए कदाचित् मैं जीवित न रहूँ परन्तु उस कार्य-प्रणाली का

संकेत मैं छोड़ जाऊँगा और तुम्हें और तुम्हारे भ्रातृ-गणों को उस पर काम करना होगा।

आशीर्वाद और प्रेमपूर्वक तुम्हारा विवेकानन्द।

(श्रीमती ओल बुल को)

बेलूर मठ,
१४ जून १९०२

प्रिय—,

........मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी जाति को मातृत्व के प्रति परम आदर की धारणा दृढ़ करनी चाहिये; और वह विवाह को अछेद्य एवं पवित्र धर्म-संस्कार मानने से हो सकती है। रोमन कैथलिक ईसाई और हिन्दू विवाह को अछेद्य और पवित्र धर्मसंस्कार मानते हैं इसलिए दोनों जातियों ने परमशक्तिमान महान ब्रह्मचारी पुरुषों और स्त्रियों को उत्पन्न किया है। अरबियों के लिए विवाह एक इकरारनामा है या बल से ग्रहण की हुई सम्पत्ति; अपनी इच्छा से जिसका अन्त किया जा सकता है इसलिए उनमें ब्रह्मचर्य-भाव का विकास नहीं हुआ है। जिन जातियों में अभी तक विवाह का विकास नहीं हुआ था उनमें आधुनिक बौद्ध धर्म का प्रचार होने के कारण उन्होंने संन्यास को एक उपहास बना डाला है। इसलिए जापान में जब तक विवाह का पवित्र और महान्

आदर्श का निर्माण न होगा (परस्पर प्रेम और आकर्षण को छोड़ कर) तब तक मेरी समझ में नहीं आता कि वहाँ बड़े-बड़े संन्यासी और संन्यासिनी कैसे हो सकते हैं। जैसा कि तुम अब समझने लगे हो कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है उसी तरह जनता के लिए इस बड़े धर्मसंस्कार की आवश्यकता—जिससे शक्तिसम्पन्न कुछ आजीवन ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति हो—मेरी भी समझ में आने लगी है।

मैं बहुत कुछ लिखना चाहता हूँ परन्तु शरीर दुर्बल है.........
"जो मेरी जिस मनोकामना से पूजा करता है, मैं उसको उसी रूप में मिलता हूँ।"......

—विवेकानन्द

हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

१-३ श्रीरामकृष्णवचनामृत-तीन भागों में-अनु० पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; प्रथम भाग (द्वितीय संस्करण)—मूल्य ६); द्वितीय भाग—मूल्य ६); तृतीय भाग-मूल्य ७॥)

४-५. श्रीरामकृष्णलीलामृत—(विस्तृत जीवनी)—(द्वितीय संस्करण)-दो भागों में, प्रत्येक भाग का मूल्य ... ... ५)

६. विवेकानन्द-चरित-(विस्तृत जीवनी)-सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, मूल्य ६)

७. विवेकानन्दजी के संग में-(वार्तालाप)-शिष्य शरच्चन्द्र, मूल्य ५।)

स्वामी विवेकानन्द कृत पुस्तकें

८. भारत में विवेकानन्द-(विवेकानन्दजी के भारतीय व्याख्यान)		५)
९. पत्रावली (प्रथम भाग)	(प्रथम संस्करण)	२=)
१०. धर्मविज्ञान	(प्रथम संस्करण)	१॥=)
११. कर्मयोग	(प्रथम संस्करण)	१॥=)
१२. हिन्दू धर्म	(प्रथम संस्करण)	१॥)
१३. प्रेमयोग	(द्वितीय संस्करण)	१।=)
१४. भक्तियोग	(द्वितीय संस्करण)	१।=)
१५. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	(तृतीय संस्करण)	१।)
१६. परिव्राजक	(तृतीय संस्करण)	१।)
१७. प्राच्य और पाश्चात्य	(तृतीय संस्करण)	१।)
१८. महापुरुषों की जीवनगाथायें	(प्रथम संस्करण)	१।)
१९. राजयोग	(प्रथम संस्करण)	१=)
२०. स्वाधीन भारत ! जय हो !	(प्रथम संस्करण)	१=)
२१. धर्मरहस्य	(प्रथम संस्करण)	१)
२२. भारतीय नारी	(प्रथम संस्करण)	॥।)
२३. शिक्षा	(प्रथम संस्करण)	॥=)
२४. शिकागो वक्तृता	(पञ्चम संस्करण)	॥=)